❀ श्रीश्रीगुरु-गौराङ्गौ जयतः ❀

स वै पुंसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे ।
अहैतुक्यप्रतिहता ययात्मा सुप्रसीदति ॥

धर्मः स्वनुष्ठितः पुंसां विष्वक्सेन कथासु यः
नोत्पादयेद् यदि रतिं श्रम एव हि केवलम् ॥

भागवत-पत्रिका

सर्वोत्कृष्ट धर्म है वह जो आत्मा को आनन्द प्रदायक ।
भक्ति अधोक्षज की अहैतुकी विघ्नशून्य अति मंगलदायक ॥

सब धर्मों का श्रेष्ठ रीति से पालन करते जीव निरन्तर ।
किन्तु हरि-कथा-प्रीति न हो, श्रम व्यर्थ सभी, केवल बन्धनकर ॥

वर्ष ४ | गौराब्द ४७३, मास—मधुसूदन २२, वार—गर्भोदशायी शुक्रवार, ३१ वैशाख, सम्वत् २०१६, १५ मई १९५९ | संख्या १२

श्रीनृसिंह-स्तवः

[श्रील-श्रीधरस्वामि-विरचितः]

जय जयाजित जङ्गम-जङ्गमावृतिमजामुपनीत-मृषागुणाम् ।
नहि भवन्तमृते प्रभवन्त्यमी, निगमगीत-गुणार्णवता तव ॥१॥

द्रुहिण-वह्नि-रवीन्द्रमुखामरा, जगदिदं न भवेत् पृथगुत्थितम् ।
बहुमुखैरपि मंत्रगणैरजस्त्वमुरुमूर्त्तिरतो विनिगद्यसे ॥२॥

सकल-वेदगणैरित सद्गुणस्त्वमिति सर्वमनीषि जन्त रताः ।
त्वयि सुभद्रगुण-श्रवणादिभिस्तव पद-स्मरणेन गतक्लमाः ॥३॥

नरवपुः प्रतिपद्य यदि त्वयि, श्रवण-वर्णन-संस्मरणादिभिः ।
नरहरे न भजन्ति नृणामिदं इतिवदुच्छ्वसितं विफलं ततः ॥४॥

त्वदंशस्य ममेशान त्वन्मायाकृतबन्धनम् ।
त्वदङ्घ्रिसेवामादिश्य परानन्द निवर्त्तय ॥ ७ ॥
त्वय्यात्मनि जगन्नाथे मन्मनो रमतामिह ।
कदा ममेदृशं जन्म मानुषं सम्भविष्यति ॥ ९ ॥
क्वाहं क्षुद्र्यादि संरुद्धः क्व च भूमन् महस्तव ।
दीनबन्धो दयासिन्धो भक्तिं मे नृहरे दिश ॥११॥
यत्सत्त्वतः सदाभाति जगदेतदसत् स्वतः ।
सदाभासमसत्यस्मिन भगवन्तं भजाम तम् ॥१३॥
तपन्तु तापैः प्रपतन्तु पर्वता—
दटन्तु तीर्थानि पठन्तु चागमान् ।
यजन्तु यागैर्विवदन्तु वादै—
र्हरिं विना नैव मृतिं तरन्ति ॥१४॥
संसारचक्र-क्रकचैर्विदीर्णं—
मुदीर्णं नानाभवतापतप्तम् ।
कथञ्चिदापन्नमिह प्रपन्नं,
त्वमुद्धर श्रीनृहरे नृलोकम् ॥१६॥
यदा परानन्द गुरो भवत्पदे,
पदं मनो मे भगवल्लभेत ।
तदा निरस्ताखिल-साधनश्रमः
श्रयेय सौख्यं भवतः कृपातः ॥२०॥
भजतो हि भवान् साक्षात् परमानन्द चिद्घनः ।
आत्मैव किमतः कृत्यं तुच्छदार-सुतादिभिः ॥२१॥
मुञ्चञ्च तदङ्गसङ्गमनीशं त्वामेव सञ्चिन्तयन्
सन्तः सन्ति यतो यतो गतमदास्तानाश्रमानावसन् ।
नित्यं तन्मुख पङ्कजाद्विगलित-त्वत्पुण्यगाथामृत-
स्रोतः संप्लव-संप्लुतो नरहरे न स्यामहं देहभृत् ॥२२॥

उद्भुतं भवतः ततोऽपि भुवनं सन्नैव सर्पः स्रजः
कुर्वत् कार्यमपीह कुटकनकं वेदोऽपिनैवंपरः ॥
अद्वैतं तव सत् परन्तु परमानन्दं पदं तन्मुदा
वन्दे सुन्दरसिन्दिरानुत हरे मा मुञ्च मामानतम् ॥२३॥
मुकुट-कुण्डल-कङ्कण-किङ्किणी,
-परिणतं कनकं परमार्थतः ।
महदहङ्कृति-ख-प्रमुखं तथा
नरहरेर्न परं परमार्थतः ॥२४॥
नृत्यन्ती तव वीक्षणाङ्गनगता काल-स्वभावादिभि—
र्भावान् सत्त्व रजोस्तमोगुणमयानुन्मीलयन्ती बहून ।
मामाक्रम्य पदा शिरस्यतिभरं सम्मर्द्दयन्त्यातुरं
माया ते शरणं गतोऽस्मि नृहरे त्वमेव तां वारय ॥२५॥
दण्डन्यासमिषेण वंचित-जनं भोगैकचिन्तातुरं
समूह्यस्तमहर्निशं विरचितोद्योगबलमैराकुलम् ॥
आशालङ्घिनमञ्जमञ्जजनतो सम्मानना-सम्मदं
दीनानाथ-दयानिधान परमानन्द प्रभो पाहिमाम् ॥२६॥
अवगमं तव मे दिश माधव,
स्फुरति यत्र सुखासुखङ्गमः ।
श्रवण वर्णन, भावमथापि वा नहि
नवानि यथा विधि-किङ्करः ॥२७॥
ऋषयो विदुरस्तमनन्त ते
न च भवान् न गिरः श्रुतिमौलयः ।
त्वयि फलन्ति यतो नम इत्यतो
जय जयेति भजे तव तत्पदम् ॥२८॥
सर्वश्रुति शिरोरत्न-निराजित-पदाम्बुजम् ।
भोग-योगप्रदं वन्दे माधवं कर्म्मि-नम्रयोः ॥२९॥

अनुवाद—

(१) हे अजित ! आप जड़-जङ्गम समस्त प्रकारके प्राणियोंके स्वरूपको आच्छादित करने वाली अनित्य गुणोंकी आश्रय-स्वरूपा मायाका विनाश कर अपना पराक्रम दिखलावें—अपनी विजयकी घोषणा करें। आपके बिना इस विश्वमें कोई भी कुछ भी करनेमें समर्थ नहीं है ॥१॥

(२) ब्रह्मा, अग्नि, सूर्य, और इन्द्र आदि देवता एवं यह विश्व आपसे स्वतंत्र रूपमें उत्पन्न नहीं हो सकते। इस लिये अनेक मंत्र आपको ही 'अज' और 'विराटमूर्त्ति' बतलाते हैं ॥२॥

(३) निखिल वेद आपकी गुणावलीका प्रचार करते हैं। आपके परम मङ्गलमय गुणोंके श्रवण और कीर्त्तन आदि द्वारा सारे मनीषिजन आपके चरण-कमलोंमें अनुरक्त रहते हैं, तथा आपके चरण कमलोंका स्मरण कर समस्त प्रकारके दुःखोंसे छुटकारा पा लेते हैं ॥३॥

(४) हे नृसिंह देव ! नर शरीर पाकर भी यदि मनुष्य श्रवण-कीर्त्तन-स्मरण आदि द्वारा आपका भजन नहीं करता है, तो उसका साँस ग्रहण करना अर्थात् जीवन धारण करना प्राणहीन भाथीके समान व्यर्थ ही है ॥४॥

(४) हे ईश्वर ! हे परमानन्द ! मैं आपका (अणु) अंश हूँ। आप मुझे अपने श्रीचरणकमलोंकी सेवा प्रदान कर मेरे माया-बन्धनको खोल दें ॥७॥

(५) आप जगन्नाथ हैं, आप ही परमात्मा हैं। आपके चरणकमलोंमें मेरा मन लग जाय। आपकी सेवाके लिये सब तरहसे योग्य मेरा मनुष्य-जन्म कब होगा ? ॥६॥

(७) हे भूमा पुरुष ! हे दीनबन्धो ! हे दया-सागर ! कहाँ बुद्धि आदि द्वारा ढका हुआ मैं, और कहाँ आपका तेज या महिमाराशि। हे नरहरि ! मुझे भक्ति प्रदान करें ॥११॥

(८) जिनकी सत्तासे यह असत् (अनित्य) जगत् सद् (सत्य) जैसा प्रतीत होता है; इस जगत्-में जो एकमात्र सत् पदार्थ हैं; उस भगवान्‌का हम भजन करते हैं ॥१३॥

(९) मानव भले ही सूर्यके तापमें बैठ कर कठोर तपस्या करे, पर्वतसे गिर पड़े, तीर्थोंमें भ्रमण करे, वेद और वेदान्त आदिका पाठ करे, विविध प्रकारके यज्ञों-द्वारा याग करे अथवा तर्क द्वारा वाद-विवाद ही क्यों न करे, बिना भगवान्‌की कृपासे कोई भी मृत्युको जीत नहीं सकता ॥१४॥

(१०) हे नृसिंह देव ! संसारचक्र रूपी आरेसे चीरे गये तथा नाना प्रकारके भवतापों अर्थात् संसा-रिक क्लेशोंसे तप्त, किसी प्रकार आपके निकट आये हुए तथा आपकी शरणमें आये हुए मनुष्योंका आप उद्धार करें ॥१६॥

(११) हे भगवन् ! हे परमानन्द गुरो ! जब मेरा मन आपके श्रीचरणकमलोंमें आश्रय लाभ करेगा, तब आपकी कृपासे ही साधन जन्य मेरा सारा श्रम दूर हो जायगा एवं मैं परम शान्ति प्राप्त कर सकूँगा ॥२०॥

(१२) हे नृसिंह देव ! भजन करनेवालोंके निकट आप साक्षात् परमानन्द चिद्घन प्राण-स्वरूप हैं; अतएव इसके बाद स्त्री-पुत्र आदिकी आवश्यकता ही क्या है ? ॥२१॥

(१३) हे नरहरे स्त्री-पुत्र आदिका संग छोड़ कर दिन-रात सर्वदा आपका चिन्तन करते-करते, अहङ्कार रहित साधुजन जिन-जिन आश्रमों और तीर्थोंमें वास करते हैं, उन-उन स्थानोंमें वास करता हुआ सदा-सर्वदा उन संतोंके मुखसे झरते हुए आपके पवित्र कथामृत रूपी झरनेमें स्नान करूँ, तो मेरा पुनर्जन्म न होगा ॥२२॥

(१४) फूलोंके हारसे निकला हुआ सर्प जैसे असत् होता है, उसी प्रकार सत्-स्वरूप आपसे उत्पन्न होने पर भी जगत् सत्य नहीं है, अर्थात् अनित्य है। स्वर्ण-राशि विविध प्रकारके अलङ्कारोंके रूपमें होकर भी जैसे अविकृत रहती है, परन्तु वेद वैसा नहीं है अर्थात् गौणार्थ द्वारा वेदार्थ भी कल्पित होता है। किन्तु आपका शुद्ध अद्वैत (अतुलनीय) भाव ही सत्य है। अतएव आनन्दपूर्वक रमा द्वारा सेवित आपके सुन्दर परमानन्दप्रद श्रीचरणकमलोंकी वंदना करता हूँ। हे हरे ! मैं आपके चरणोंका दास हूँ, मेरा परित्याग न करेंगे ॥२३॥

(१५) जैसे स्वर्ण मुकुट, कुण्डल, कंगन और नुपुरके रूपमें बदल करके भी वस्तुतः स्वर्ण ही रहता है, उसी प्रकार महत् या चित्त, अहंकार, आकाश आदि श्रीनृसिंह-विष्णुसे वस्तुतः भिन्न नहीं हैं ॥२४॥

(१६) आपके ईक्षणसे क्षुब्ध हुई आपकी माया नाचते-नाचते काल और स्वभाव द्वारा सत्त्व-रजस्तम-मय अनेक भावोंको प्रकाश कर मुझ आतुर-असमर्थके सिर पर अत्यन्त निष्ठुर रूपसे आक्रमण कर मुझे पीस रही है; हे नरहरे ! मैं आपके शरणमें आया हूँ, आप अपनी मायाका प्रभाव रोकिये ॥२५॥

(१७) हे दीनानाथ ! हे अनाथबन्धो ! हे प्रभो !

मैं दण्ड और संन्यास ग्रहण करनेका छल कर केवल भोग चिन्तामें पीड़ित एक वंचित व्यक्ति हूँ। मैं सर्वदा अत्यन्त मोह प्राप्त हो रहा हूँ, मैं अपने तैयार किये हुए कर्म-क्लेशमें पड़कर बहुत ही दुःखी हूँ। हे परमानन्दमय प्रभो! मैं आपकी आज्ञा न मानने वाला नितान्त मूर्ख हूँ तथा मूर्खोंके निकट सम्मान पाकर अतिशय अभिमानी हो गया हूँ; आप मेरी रक्षा करें ॥२६॥

(१८) हे माधव! आपके स्वरूप-ज्ञान और आपके विषयमें श्रवण और कीर्त्तनमें आसक्ति पैदा करें, जिससे मुझे विषयजन्य सुख-दुख स्पर्श न करें और जिससे मैं केवल प्रेम-शून्य विधियोंका दास न हो जाऊँ ॥२७॥

(१९) हे अनन्त! देववृन्द आपका अन्त नहीं जानता, आप भी अपना अन्त नहीं जानते, वेद भी आपका तत्त्व निरूपण करनेमें समर्थ नहीं हैं; इसलिये आपको नमस्कार है। 'आपकी जय हो', 'जय हो' इत्यादि वचनोंका उच्चारण कर मैं आपके उन दुर्लभ चरणकमलोंका भजन करता हूँ ॥२८॥

(२०) कर्मी और भक्तके लिये जिनके चरण-कमल क्रमशः भोग और योगको देनेवाले हैं एवं जिनके चरणकमल निखिल श्रुति-समूहके शिरोरत्न समूह द्वारा निराजित होते हैं, उन माधवको मैं प्रणाम करता हूँ ॥२९॥

संत (सज्जन) के लक्षण

सर्वोपकारक (१०)

संसारमें जीव चार श्रेणियोंमें विभक्ति हैं—

(१) अन्याभिलाषी, (२) कर्मी, (३) ज्ञानी, (४) भक्त।

जो लोग कर्म, ज्ञान या भक्तियोग स्वीकार नहीं करते और अपनी रुचिके अनुसार भली-बुरी जैसी इच्छा होती है, आचरण करते हैं एवं वैसे स्वेच्छाचार द्वारा सुख-भोगको ही पुरुषार्थ मानते हैं, वे अन्याभिलाषी कहलाते हैं।

द्वितीय श्रेणीके जीव कर्मी कहलाते हैं। वे लोग सत्कर्मोंका आचरण करते हैं तथा उसके द्वारा सुख-भोग करनेके उद्देश्यसे पुण्य-संग्रह करते हैं। लौकिक विषय-सुख और पारलौकिक स्वर्ग-सुखके उद्देश्यसे; मह, जन, तप और सत्य आदि लोकोंकी प्राप्तिकी आशासे कर्मीजन स्कूल और अस्पताल बनवाते हैं, छायादार पेड़ लगाते हैं, पथ निर्माण करते हैं, जल-दानकी व्यवस्था करते हैं, ब्राह्मण-भोजन करवाते हैं तथा लोकहितकर शिक्षा-भवन आदि सत्कर्मोंका अनुष्ठान करते हैं और इन सत्कर्मों के द्वारा पुण्य संचय कर बदलेमें फलस्वरूप अपनी प्रतिष्ठा एवं विषय-भोग आदि प्राप्त करते हैं। इसीको ये लोग धर्म, अर्थ और काम रूप त्रिवर्गकी सिद्धि मानते हैं। कर्मीजन की गति अनित्य फल भोग तक ही सीमित रहनेके कारण वे जगत्का यथार्थ कल्याण करनेमें असमर्थ होते हैं।

पूर्वोक्त स्वेच्छाचारी अन्याभिलाषियोंसे उपरोक्त पुण्यवान् कर्मी श्रेष्ठ हैं तथा अन्याभिलाषीके स्वेच्छा-चारसे पुण्यकामी कर्मीलोगोंके व्रत हठ-योग और वैदिक वर्णाश्रमधर्म आदि अनित्य सत्कर्म अपेक्षाकृत सत् हैं। यद्यपि अन्याभिलाषीकी तुलनामें सत्कर्म परायण मनुष्य दूसरोंका अनित्य और आंशिक उपकार अधिक मात्रामें करता है, परन्तु वे सर्वोप-कारक नहीं हैं। असल बात तो यह है कि कर्मीजन

यथार्थ उपकार किसे कहते हैं, यह नहीं जानते। इस लिये वे अपना भी यथार्थ उपकार नहीं कर पाते। इसका प्रधान कारण यह है कि उनलोगोंको न तो अपने स्वरूपका बोध होता है और न दूसरे लोगोंके स्वरूपका ही बोध होता है, जिनको वे अपना मानते हैं। खण्डकालके अन्तर्गत लौकिक, स्वर्गीय और मह, तप एवं सत्यलोक तकके सारे सुख अनित्य होते हैं—कर्मीजन इसे अनुभव नहीं कर पाते, यह बड़े दुःख की बात है। कर्मीजन संसारमें भाषण द्वारा उपदेश देते हैं और उससे स्वयं अनित्य जड़-सुख भोग करते हैं तथा दूसरोंको अनित्य जड़ सुखोंकी ओर खींचते हैं।

ज्ञानी—तीसरी श्रेणीके जीव हैं। ज्ञानीजन कर्म-काण्डमें निपुण कर्मियोंकी तरह आंशिक और अनित्य सुखके कंगाल नहीं होते। इनके विचारसे खण्डकालके अनित्य सुख कभी भी पूर्ण नहीं हैं; इसलिये ये लोग कर्मियोंको नितांत तुच्छबुद्धि-सम्पन्न भोगी मानते हैं। इनके विचारसे अन्याभिलाषीका स्वेच्छाचार और कर्मीका पुण्य—दोनों ही वर्जनीय हैं। ये लोग अपनेको भोगीसे विपरीत त्यागी या वैरागी कहनेमें व्यस्त दीखते हैं। ज्ञानीका कहना है कि भोगबुद्धिमें अज्ञान निवास करता है, जो काल द्वारा बदलता रहता है। जो बदलता रहता है, वह अद्वय पदार्थ नहीं हो सकता है। वस्तु या पदार्थको अद्वय होनेके लिये उस वस्तुका निराकार निर्विशेष होना आवश्यक है। निर्विशेष वस्तुमें विचित्रताका अभाव रहनेसे उसमें द्रष्टा, दृश्य और दर्शनगत नित्य विशेषता नहीं होती। भेद अथवा द्वैतकी भावना अज्ञानसे उत्पन्न होती है। अतः उस अवस्था में अशान्ति कल्पित होती है। अज्ञान दूर होनेपर अखण्ड ज्ञान, अखण्ड सत्ता और अखण्ड आनन्द (अनवच्छिन्न आनन्द) का उदय होता है। तब ज्ञान, ज्ञेय, ज्ञाता—द्रष्टा, दृश्य और दर्शन—उपास्य, उपासक और उपासना—आनन्द, आनन्द अनुभवकर्ता और आनन्द अनुभवकी क्रिया—ये तीन विशेष अनन्तकालके लिये विलुप्त हो जाते हैं और एक मात्र अद्वयताका निर्विशेषत्व ही बच रहता है।

यह निर्विशेष केवलाद्वैतसिद्धि ही ज्ञानीको अभीष्ट है। वे मन ही मन सोचते हैं कि वे ऐसे शुद्ध, पूर्ण, नित्य, मुक्त भगवत् सत्ताको जड़का एक प्रकारका भेद बतलाकर जगत्का कल्याण करेंगे। परन्तु वैसा काल्पनिक जड़ विचार भगवानकी अनन्त शक्तिमत्ताका ह्रास करनेमें समर्थ नहीं है। ज्ञानीजन भगवान्की चित् सत्ता—चित् सविशेष भाव स्वीकार न कर न्यूनाधिकरूपमें स्वेच्छाचारी अन्याभिलाषियों के विचारोंका ही समर्थन करते हैं। अतएव निज-तत्त्व एवं पर-तत्त्वके सम्बन्धमें अनभिज्ञ ज्ञानीजन भी जगत्का पूर्णरूपमें उपकार नहीं कर पाते—जड़ मुक्तितक ही सीमित रह जाते हैं। जीवोंको नित्य, पूर्ण, शुद्ध परमानन्दका परिचय नहीं दे पाते हैं।

भगवान सर्वशक्तिमान हैं। वे अखिल रसामृत-सिन्धु हैं। सर्वशक्तिमान भगवान अपनी सच्चिदा-नन्द स्वरूप-शक्ति प्रकट कर नित्यकाल पूर्ण चिद्-विलासका विस्तार कर जिस सर्वोपकारिताका पूर्ण परिचय देते हैं, वह निर्विशेषवादियोंके ज्ञानगम्य नहीं, एकमात्र भक्ति द्वारा ही लभ्य है। निष्ठुर ज्ञानी मोक्षका एक काल्पनिक चित्र चित्रित करते हैं और अतत्त्वज्ञ जीवोंको बहकाकर उस तरफ खींचते हैं। भक्तिकी अवज्ञा करनेके कारण इनका सज्जन पुरुषों के चरणोंमें अपराध हो जाता है। ज्ञानयोग द्वारा कभी भी किसका कोई उपकार नहीं होता। संसारके सुखदुःखसे मुक्त होनेके अभिप्रायसे चिन्मय शक्ति-मान् भगवान्को निर्विशेष-तत्त्व बतला कर वे जो अपराध संचय करते हैं, उससे मुमुक्षुजनोंका कोई उपकार साधन नहीं होता और साथ ही भक्तजनोंका भी उपकार नहीं होता।

भक्त चौथी श्रेणीके जीव हैं। कृष्णभक्त ही एकमात्र सर्वोपकारक होते हैं। वे ही सच्चे अर्थोंमें सज्जन होते हैं। शुद्धभक्त ही मायावादियोंका

मायावादके दूषित विचार-जालसे उद्धार करनेमें समर्थ हैं, वे ही कर्मियोंको तुच्छ विषय-भोग रूपी पंकसे उबार सकते हैं तथा अन्याभिलाषियोंको स्वेच्छाचार रूप अंधकूपसे निकाल कर भगवत्सेवामें नियुक्त कर सकते हैं। इसीलिये शुद्धभक्त कुलशेखरने कहा है—धर्म, अर्थ और काम—इस त्रिवर्गकी कामना अथवा पार्थिक अशान्तिसे परे होनेकी अर्थात् मोक्षकी वासना शुद्धभक्तोंके हृदयमें वास नहीं कर सकती। उनका हृदय तो सर्वदा हरि-सेवामयी वृत्तिसे भरपूर रहता है, अतः कृष्ण-सेवासे इतर कामनाएँ वहाँ वास ही कैसे कर सकती हैं? यह हरिसेवा ही जीवमात्रकी नित्य और स्वाभाविक वृत्ति है, जिसे वह हरि-विमुखताके कारण भूल बैठा है। जीवोंमें इस हरिसेवा वृत्तिका पुनः उदय कराना ही सर्वश्रेष्ठ उपकार है। भगवद् भक्तजन यही करते हैं। इसलिये वे ही सर्वश्रेष्ठ परोपकारी हैं।

अस्तु, एकमात्र कृष्णके शरणागत सज्जनवृन्द ही अपना उपकार करने तथा सम्पूर्ण विश्वके जीवों को हरिसेवा प्रदान करनेके कारण सर्वोपकारक कहलाते हैं। शुद्धभक्तोंका यह सर्वदा ही प्रयत्न होता है कि जीव किस प्रकार अन्याभिलाषी, कर्मी और ज्ञानीके कुसंगसे दूर रह कर हरि-सेवामें नियुक्त हो सके। संसारमें इस दयासे बढ़कर कोई दूसरी दया नहीं। इसलिये सज्जन अर्थात् भगवद्भक्त सर्वोपकारक होते हैं।

—ॐ विष्णुपाद श्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती

भक्तितत्त्वविवेक-चतुर्थ प्रबन्ध

भक्त्यधिकार-विवेक

कर्म-ज्ञान-विरागादि-चेष्टां हित्वा समन्ततः।
श्रद्धावान् भजते यं तं श्रीचैतन्यमहं भजे॥

पहले प्रबन्धमें 'शुद्धा भक्तिका स्वरूप', दूसरे प्रबन्धमें भक्ति जैसी दिखलाई पड़नेवाली परन्तु स्वरूपतः भक्ति नहीं अर्थात् 'भक्ति-आभास' का स्वरूप, तीसरे प्रबन्धमें 'शुद्धाभक्तिका स्वभाव' विवेचित हुआ है। सम्प्रति इस प्रबन्धमें 'शुद्धाभक्तिका अधिकार' पर विचार किया जा रहा है। अधिकारके बिना किसी को कुछ भी नहीं मिलता है। अधिकार या योग्यता ही सफलताकी आधार शिला है। इस बातको पूरी तरहसे समझ लेनेपर प्राप्तिके सम्बन्धमें तनिक भी सन्देह नहीं रह जाता है। अनेक लोग ऐसा सोचते हैं कि हमलोग बहुत दिनोंसे गुरु-पदाश्रय किये हैं, उनसे भगवन्मंत्र ग्रहण किये हैं, श्रवण और कीर्त्तन भी कर रहे हैं, परन्तु कोई फल नहीं हो रहा है, क्यों? धीरे-धीरे भजनमें अरुचि और अन्तमें अविश्वास हो जाता है। इस लिये अधिकार सम्बन्धी विचारको भलीभाँति जान लेने पर ऐसे-ऐसे संदेहोंसे सहज ही रक्षा हो सकती है। स्मरण रहे कि सभी लोगोंका श्रवण-कीर्त्तन आदि तथा श्रवण-कीर्त्तनजन्य अश्रु पुलक आदि भक्ति नहीं है। इसलिये शुद्धाभक्तिका आश्रय लेने के लिये अधिकारका निर्णय होना नितांत कर्त्तव्य है। कर्माधिकारी या ज्ञानाधिकारीका हरिभजन प्रायः कर्म या ज्ञानका अंग हो पड़ता है। इसलिये वे जैसा मंगलमय फल होना चाहिए, वैसा प्राप्त नहीं कर पाते।

शुद्धाभक्तिमें अधिकार प्राप्त करने पर ही हरि-भजन शुद्ध होता है और शीघ्र ही वह शुद्धाभक्ति

होकर भाव रूपीफलको उदय कराता है। इसलिये अधिकार-निर्णयमें प्रवृत्त हुआ हूँ।

पण्डितजन श्रीमद्भगवद्गीतासे इस श्लोकको उद्धृत करते हैं—

चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुकृतिनोऽर्जुन।
आर्त्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ॥

हे अर्जुन! जन्म जन्मांतरके पुण्य-राशिके प्रभाव से आर्त्त, जिज्ञासु, अर्थार्थी और ज्ञानी—चार श्रेणी के जीव मेरा भजन करते हैं। ये चार प्रकारके सुकृतिशाली पुरुष ही मेरे भजनके अधिकारी हैं। अपने दुःखको दूर करनेके लिये जिनको व्याकुलता भरी इच्छा होती है, वे आर्त्त हैं। जिनके हृदयमें तत्त्वको जाननेके लिये जिज्ञासा उत्पन्न होती है, वे जिज्ञासु हैं। सुख पानेकी इच्छा रखनेवाले लोग अर्थार्थी कहलाते हैं। जो निर्बाधगतिसे तत्त्वका दर्शन करते हैं, वे ज्ञानी कहलाते हैं। आर्त्त हो जिज्ञासु हो, अर्थार्थी हो या ज्ञानी हो, सुकृति नहीं रहने पर इनकी भजनमें प्रवृत्ति नहीं होती। श्रीजीव-गोस्वामीने 'सुकृति'—शब्द का अर्थ—'भक्ति-वासना के हेतु महत्-संग से युक्त कार्य' बतलाया है। इनमेंसे आर्त्त, जिज्ञासु और अर्थार्थी इन तीन प्रकारके लोगोंमें सुकृतिके रहने या न रहनेके सम्बन्धमें संशय हो सकता है, परन्तु ज्ञानीके सम्बन्धमें यह संशय नहीं रहता। ज्ञानी निस्संदेह सुकृति सम्पन्न होकर ही भजनमें प्रवृत्त होता है। श्रीरूपगोस्वामी कहते हैं—

तत्र गीतादि-युक्तानां चतुर्णामधिकारिणाम्।
मध्ये यस्मिन् भगवतः कृपा स्यात्तत्प्रियस्य वा॥
स क्षीणतत्तद्भावः स्याच्छुद्धभक्त्यधिकारवान्।
यथेभः शौनकादिश्च ध्रुवः स च चतुःसनः॥

(भ. र. सि. १।२।१४)

गीता आदि शास्त्रोंमें जिन चार प्रकारकी भक्तिके अधिकारियोंका निर्देश है, उन लोगोंके ऊपर भगवान् की या भगवद्भक्तोंकी कृपा होने पर उनकी आर्त्ती, जिज्ञासा, अर्थकी वासना तथा उनका ज्ञान-भाव क्रमशः दूर होनेपर शुद्ध-भक्तिमें अधिकार प्राप्त होता है। गजराज, शौनक आदि ऋषि, ध्रुव और सनक-सनातन आदि चार कुमार—ये उदाहरणके रूप में लिये जा सकते हैं। जब गजराज ग्राहके द्वारा पकड़े गये और लाख कोशिश करने पर भी अपनी रक्षा करनेमें समर्थ न हुए, तब बड़े आतुर होकर उन्होंने भगवानको पुकारा। दीनोंके एकमात्र बन्धु भगवान् प्रकट हुए और ग्राहको मारकर गजराजको उबारे। उस समय भगवान्की कृपासे गजराजका आर्त्तभाव दूर होने पर वह शुद्धा भक्तिका अधिकारी हुआ। शौनक आदि ऋषि कलियुगके उपस्थित होने पर बड़े भयभीत हुए। कर्मसे कुछ भी कल्याण नहीं होनेका—ऐसा सोचकर वे परमभागवत श्रीसूत गोस्वामीके निकट पहुँचे और उनसे जीवोंके परम कल्याणका उपाय जिज्ञासा किये। उत्तरमें सूत गोस्वामीने उन्हें शुद्धाभक्तिका उपदेश दिया, जिसे सुनकर वे शुद्धाभक्ति प्राप्त किये। ध्रुव अर्थ (राज्य) की कामनासे प्रेरित होकर भगवानकी उपासनामें तत्पर हुए। परन्तु जब भगवान प्रकट हुए, तब उनकी कृपा से ध्रुव की अर्थ-कामना दूर हो गयी और उनका शुद्धभक्त्यधिकार उपस्थित हुआ। सनक, सनातन सनन्द और सनत्कुमार—ये चार-कुमार हैं। ये पहले निर्विशेष ज्ञानी थे, पीछेसे भगवान् और भगवद्भक्तजनोंकी कृपा लाभकर निर्विशेष बुद्धिका सम्पूर्ण रूपसे त्यागकर शुद्धाभक्तिमें अधिकार पाया था।

तात्पर्य यह है कि जब तक उनके हृदयमें आर्त्ति, जिज्ञासा, अर्थार्थ या ज्ञान रूप कषाय (कषैला होने का भाव) वर्त्तमान था, तब तक उनका शुद्धाभक्तिमें अधिकार नहीं हुआ था। इसलिये श्रीरूपगोस्वामी ने शुद्धाभक्तिके अधिकारके सम्बन्धमें लिखा है—

यः केनाप्यतिभाग्येन जातश्रद्धोऽस्य सेवने।
नातिसक्तो न वैराग्यभाग्यस्यानधिकार्यसौ॥

(भ. र. सि. १।२।६)

संसारके प्रति न तो अत्यन्त आसक्त हो और न तो सम्पूर्ण रूपसे विरक्त ही हो, ऐसी अवस्थामें

जब अतिशय सौभाग्यसे कृष्ण-सेवामें मनुष्यकी श्रद्धा हो जाय, तो वह शुद्धाभक्तिका अधिकारी समझा जाता है। तात्पर्य यह कि संसारी मनुष्य नाना-प्रकारके दुखोंसे जर्जरित तथा प्रयोजनीय वस्तुओंके अभावसे क्लिष्ट होनेपर जब संसारकी चरमगतिका अनुभव करते हैं, तब वे संसारके प्रति अनासक्त होकर जीवन धारण करते हैं। सौभाग्य वश यदि उन्हें उस समय सत्संग मिल गया तो वे सत्संगमें जिज्ञासा द्वारा यह जान पाते हैं कि भगवान्‌के सिवा जीवकी कोई दूसरी गति नहीं है। धीरे २ उनका इस बात पर दृढ़ विश्वास हो जाता है और वे भगवानके भजनमें लग पड़ते हैं। उस समय उनमें कृष्ण-भक्तिके प्रति श्रद्धा पैदा होती है। यही श्रद्धा शुद्धभक्तिके प्रति अधिकारका मूल हेतु है—

जातश्रद्धो मत्कथासु निर्विण्णः सर्व कर्मसु।
वेद दुःखात्मकान् कामान् परित्यागेऽप्यनीश्वरः॥
ततो भजेत् मां प्रीतः श्रद्धालुर्दृढनिश्चयः।
गुणभाणश्च तान् कामान् दुःखोदर्कांश्च गर्हयन्॥
(श्रीमद्भा०)

उपर्युक्त श्लोकोंकी व्याख्या करते हुए भक्ति सन्दर्भमें श्रीजीव गोस्वामीने लिखा है—"तदेवमनन्य-भक्त्यधिकारे हेतु श्रद्धामात्रमुक्त्वा स यथा भजेत् तथा शिक्षयति" अर्थात् उक्त श्लोकोंमें एकमात्र श्रद्धा को ही अनन्य भक्तिके प्रति अधिकारका हेतु बतला कर श्रद्धालु पुरुष किस प्रकारसे भजन करते हैं, कह रहे हैं—मेरी लीला-कथाके प्रति श्रद्धालु पुरुष समस्त कर्मोंसे विरक्त होकर आपात् सुखकर विषय-भोगको परिणाममें दुःखदायी समझते हैं, फिर भी जीवन-निर्वाहके लिये तथा पूर्व-वासनारूप अनर्थोंके द्वारा कुछ अंशमें अधीन हुआ उस कर्मजाल और कर्म फलसे छुटकारा पानेके लिये सच्चे हृदयसे उन्हें दुःख-जनक समझता हुआ तथा मन-ही-मन उनकी (कर्मों की) निन्दा करते हुए उनको भोग करता रहता है और साथ ही श्रद्धापूर्वक दृढ़ निश्चयके साथ मेरा भजन भी करता रहता है।'

श्रीजीव गोस्वामी पुनः लिखते हैं—"श्रद्धा हि शास्त्रार्थ विश्वासः। शास्त्रञ्च तद्शरणस्य भयं तच्छरणस्याभयं वदति। अतो जातायाः श्रद्धायास्तत् शरणापत्तिरेव लिङ्गमिति।" अर्थात् शास्त्रके अर्थमें विश्वासका नाम—श्रद्धा है। शास्त्र यह कहते हैं कि जिन्होंने भगवानके चरणोंमें शरण ली है, उन्हें कोई भय नहीं, परन्तु जिन्होंने भगवान्‌के चरणोंमें शरण नहीं ली है, उन्हें भय है। अतएव शरणापत्ति-लक्षण देखनेसे ही ऐसा समझना होगा कि श्रद्धा उत्पन्न हुई है।

शरणापत्ति किसे कहते हैं? श्रीजीव गोस्वामी लिखते हैं—"जातायां श्रद्धायां सदा तदनुवृत्ति-चेष्टैव स्यात्", "कर्म-परित्यागो विधियते।" अर्थात् श्रद्धाके उत्पन्न होनेपर कृष्णानुवृत्ति-चेष्टा (कृष्णसेवामें निरन्तर प्रयत्न) सर्वदा लक्षित होती है और कर्म स्वरूपतः छूट जाता है। इसीको शरणापत्ति कहते हैं। श्रीमद्भगवद्गीतामें कर्म, ज्ञान और भक्तिका अलग-अलग विवेचन करनेके पश्चात् अतिशय गुह्यतम उपदेश द्वारा भगवान्‌ने शरणापत्तिकी शिक्षा दी है—

सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥

सर्वधर्म शब्दसे वर्णाश्रम रूप कर्मनिष्ठा और कृष्णभिन्न दूसरे देवताओंकी पूजा इत्यादि शरणापत्ति-बाधक धर्मोंको समझना चाहिए। उन सबका परित्याग कर तुम मेरी शरणापत्ति अर्थात् मेरे भजनके प्रति श्रद्धा स्वीकार करो। ऐसी दशामें कर्मोंके स्वरूपतः त्यागजन्य यदि पाप उपस्थित भी हो तो कोई भय नहीं। मैं उन पापोंसे तुझे अवश्य ही मुक्त कर दूँगा।

यहाँ शंका हो सकती है कि श्रद्धा-शब्दसे आदर का बोध होता है। कर्म और ज्ञान आदि अनुष्ठानोंमें भी श्रद्धाकी आवश्यकता है। अतएव श्रद्धा केवल भक्तिका ही हेतु नहीं, कर्म और ज्ञानका भी हेतु है। तो सिद्धान्त यह है कि श्रद्धा-शब्दसे शास्त्र-अर्थमें

विश्वास रूप भावका बोध होता है, और इस भावके अन्तर्गत एक और भी भाव निश्चित रूपमें वर्त्तमान रहता है, जिसका नाम 'रुचि' है। विश्वास रहने पर भी किसी कार्यमें प्रवृत्ति नहीं होती, बल्कि उसके लिये रुचिकी भी आवश्यकता होती है। कर्म और ज्ञानमें जो श्रद्धा होती है, उसमें रुचि रूपा भक्ति-परमाणु होता है। उस भक्तिके संसर्गसे ही कर्म और ज्ञान फल प्रदान करनेमें समर्थ होते हैं। उसी प्रकार भक्तिके सम्बन्धमें जो श्रद्धा उदय होती है, उसके साथ-साथ रुचि नामक एक भाव भी अनुस्युत रहता है। यह रुचिसे मिली हुई श्रद्धा ही भक्तिलता का बीज है, जो जीव हृदयमें बोया जाता है। कर्म-श्रद्धा और ज्ञान-श्रद्धामें क्रमशः कर्म-रुचि और ज्ञान-रुचि मिली होती है, परन्तु इनमें श्रद्धाका रूप अलग-अलग होता है। भक्ति-रुचिके साथ मिली हुई श्रद्धाका लक्षण भक्तिमें ही पर्यवसित हो जाता है। इसीको शरणापत्ति कहते हैं। भक्ति-रुचि ही साधुसंग, पश्चात् भजन और अनन्तर अनर्थ शून्य अवस्था लाभ करने पर निष्ठा बन जाती है। इसी निष्ठाको शुद्ध रुचि कहते हैं। इसलिये श्रद्धा भक्तिसे एक अलग तत्त्व है। श्रीजीव गोस्वामी भक्तिसन्दर्भ में लिखते हैं—"तस्माच्छ्रद्धा न भक्त्यंगं किन्तु कर्म-ण्यसमर्थविद्वत्तावद्नन्या-रुचायां भक्तौ अधिकारि-विशेषणमेव।"

अतएव श्रद्धा भक्तिका अङ्ग नहीं है। परन्तु कर्मकाण्डसे विरक्त होनेपर अनन्यभक्तिके अधिकारका विशेषण मात्र है। श्रीमद्भागवतमें कहा है—

तावत् कर्माणि कुर्वीत न निर्विद्येत यावता।
मत्कथा-श्रवणादौ वा श्रद्धा यावन्न जायते॥

(श्रीमद्भा०)

जब तक कर्मके प्रति विरक्ति न पैदा हो जाय, अथवा मेरी लीला-कथाओंके श्रवणमें श्रद्धा न उत्पन्न हो जाय, तभी तक कर्मका आचरण करना चाहिए। तात्पर्य यह है कि कृष्णकी लीला-कथाओंके प्रति श्रद्धा होने पर कर्म त्यागका अधिकार उपस्थित हो जाता है—यही शास्त्र सिद्धान्त है।

शंका समाधानके लिये यह दलील भी दी जारही है कि जब भक्ति-अधिकारका हेतु—श्रद्धा तक भी भक्तिका अङ्ग नहीं है, तब ज्ञान और वैराग्य भक्तिके अङ्ग कैसे हो सकते हैं, भले ही ये दोनों श्रद्धाके पीछे-पीछे कहीं कहीं क्यों न प्रकाशित हों। श्रीरूपगोस्वामी कहते हैं—

ज्ञान-वैराग्ययोर्भक्ति प्रवेशायोपयोगिता।
ईषत् प्रथममेवेति नाङ्गत्वमुचितं तयोः॥

(भक्तिरसामृतसिन्धु)

किसी विशेष स्थलपर ज्ञान और वैराग्य भक्ति-तत्त्वमें प्रवेश करनेके समय प्रारम्भमें कुछ-कुछ उप-योगी होते हैं तथापि उनको भक्तिका अङ्ग कदापि नहीं माना जा सकता है।

अस्तु, शरणापत्ति-लक्षणसे युक्त एकमात्र श्रद्धा ही शुद्धाभक्तिके अधिकारका हेतु है—यही सिद्धान्त स्थिर हुआ। कुछ लोग यह भी कहते सुने जाते हैं कि किसी-किसीको सुष्ठूरूपसे कर्मका आचरण करने से, किसी-किसी को ज्ञानके अनुशीलनसे और किसी-किसीको विषय-भोगोंके प्रति वैराग्यसे कृष्णकी लीला-कथाओंके श्रवणमें श्रद्धा उत्पन्न होती है। परन्तु उनका यह कथन भ्रम मात्र है। ऐसा हो सकता है कि श्रद्धा उत्पन्न होनेके ठीक कुछ ही पहले उपर्युक्त विषयोंका अनुशीलन हो गया हो; परन्तु सूक्ष्म विचार करनेसे पता चल जायगा कि उन-उन विषयोंके अनुशीलन और श्रद्धाके उदय—इन दोनों घटनाओंके बीच किसी न किसी रूपमें सत्संग अवश्य ही हुआ होगा। इस विषय में श्रीमद्भागवतका यह श्लोक अनुशीलनीय है—

भवापवर्गस्य भ्रमतो यदा भवेत्,
जनस्य तर्ह्यच्युत-सत्समागमः।
सत्सङ्गमो यर्हि तदैव सद्गतौ,
परावरेशे त्वयि जायते रतिः॥

हे अच्युत ! तुमसे विमुख होकर जीव कभी कर्म-मार्गके प्रति आसक्त होकर संसार—विषय-सुख प्राप्त करता है और कभी ज्ञान-मार्गके प्रति अनुरक्त होकर अपवर्ग—मोक्ष पा रहा है। इस प्रकार बार-बार जन्म-मरणरूप संसारका चक्कर काटना उनके लिये अनिवार्य है। इस प्रकार भ्रमण करते-करते यदि सौभाग्यसे कभी सत्संग मिल जाय, तभी संतोंके आश्रय, जड़-चेतन सम्पूर्ण सृष्टिके ईश्वर और सद्-गति स्वरूप तुम्हारे चरणकमलोंमें जीवकी बुद्धि दृढ़ता से लग जाती है। अतएव कर्म, ज्ञान और वैराग्य आदि श्रद्धाको उत्पन्न करनेमें कदापि समर्थ नहीं हैं, उसे तो एक सत्संग ही उत्पन्न करनेमें समर्थ है। इसी लिये श्रीरूप गोस्वामीने कहा है—

"यः केनाप्यतिभाग्येन जातश्रद्धोऽस्य सेवने" इत्यादि। (क्रमशः)

—जगद्गुरु श्रीश्रीमद्भक्ति विनोद ठाकुर

शरणागति

[ॐविष्णुपाद श्रीमद्भक्ति विनोद ठाकुर]

सिद्ध देहमें कृष्णभजनका उद्दीपन

राधाकुंडतट-कुंजकुटीर।
गोवर्द्धन-पर्वत यमुना तीर॥
कुसुम सरोवर मानस-गंगा।
कलिन्द-नन्दिनी विपुल तरंगा॥
बंशीवट गोकुल धीर-समीर।
तरु तमाल यमुना का नीर॥
खग मृगकुल मलय बतास।
मयुर भ्रमर मुरली विलास॥
वेणु शृङ्ग पदचिह्न मेघमाला।
बसन्त शशाङ्क शंख करताला॥
युगल विलासमें अनुकूल जानि।
लीला विलास उद्दीपक मानि॥
यह सब छोड़त कहीं ना जाऊँ।
इनको छोड़े प्राण गँवाऊँ॥
भकति विनोद कहे सुन कान।
तुम्हरो उद्दीपक हमारो प्राण॥

जैव-धर्म

[गतांकसे आगे]

इक्कीसवाँ अध्याय

प्रमेयान्तर्गत अभिधेय-विचार—रागानुगा साधनभक्ति

वैध साधन-भक्ति सम्बन्धी विचारोंको सुनकर विजयकुमार और व्रजनाथ बड़े ही प्रभावित हो गये हैं। दोनोंने परस्पर मिलकर स्थिर किया, कि परमार्थ राज्यमें प्रवेश करनेके लिये किसी सिद्ध महात्मासे हरिनाम और दीक्षा ग्रहण करना आवश्यक है। इस लिये उन्होंने समय नष्ट न कर अगले दिन ही सिद्ध बाबाजी महाराजसे दीक्षा ग्रहण करनेका निश्चय किया।

विजयकुमारको लड़कपनमें ही उनके कुलगुरु द्वारा दीक्षा-मंत्र मिल चुका था। परन्तु व्रजनाथको केवल गायत्री मंत्रकी दीक्षाके अतिरिक्त किसी दूसरे मंत्रकी दीक्षा नहीं मिली थी। बाबाजी महोदयके उपदेशोंसे ये दोनों अच्छी तरह समझ गये थे कि अवैष्णव गुरु द्वारा प्राप्त मंत्रका जप करनेसे जीव का नरक होता है; इसलिये विवेक-बुद्धि होनेपर उसे फिरसे शास्त्रीय विधियोंके अनुसार शुद्ध-वैष्णव गुरुसे दीक्षा लेनी चाहिए। विशेषकर सिद्धभक्तसे मंत्र ग्रहण करनेसे बहुत शीघ्र ही मंत्रकी सिद्धि होती है। ऐसा सोचकर दोनोंने यह निश्चय किया कि वे दोनों कल सवेरे मायापुरमें गंगा-स्नानकर परमाराध्य बाबाजी महाशयके निकट दीक्षा लेंगे।

दूसरे दिन सवेरे गंगा-स्नान कर द्वादश अंगोंमें तिलक धारण कर दोनों श्रील रघुनाथदास बाबाजी के चरण-प्रान्तमें पहुँच कर साष्टांग दण्डवत् प्रणाम किये।

बाबाजी महाराज सिद्ध-वैष्णव थे। वे दोनोंके मनकी बात समझ गये। परन्तु ऊपरसे बोले—'आज इतना सवेरे कैसे आये? क्या बात है?'

दोनोंने नम्रतापूर्वक उत्तर दिया—'प्रभो! हमें दीन-हीन और कंगाल समझ कर कृपा करें।'

दोनोंकी बात सुन बाबाजी बड़े प्रसन्न हुए और दोनोंको एक-एक कर अपनी कुटीमें बुला कर अष्टादशाक्षर मंत्र प्रदान किये। मंत्र पाकर वे दोनों जप करते-करते महाप्रेममें मत्त होकर 'जय-गौरांग' 'जय गौरांग' बोल कर नृत्य करने लगे। गलेमें त्रिकंठी तुलसीकी माला, सुन्दर यज्ञोपवीत, द्वादश अंगोंमें तिलक, मनोहर मुख-मण्डल, कुछ-कुछ सात्त्विक विकार और आँखोंसे निरन्तर बहते हुए आँसूओंकी धारा—ऐसा सुन्दर रूप देख कर बाबाजी दोनोंको गलेसे लगाते हुए बोले—'आज तुम लोगों ने मुझे पवित्र कर दिया।'

वे दोनों बाबाजीकी चरण-धूलिको बार-बार आस्वादन करते हुए मस्तकपर और सारे अंगोंमें मलने लगे। इधर व्रजनाथके पूर्व-व्यवस्थानुसार उनके दो नौकर श्रीमन्महाप्रभुके भोगकी प्रचुर सामग्री लेकर उपस्थित हुए। विजयकुमार और व्रजनाथने हाथ जोड़कर उन भोग-सामग्रियोंका भोग लगानेके लिये प्रार्थना की। श्रीवास-अंगनके अधिकारी महोदयने पुजारीके द्वारा भोग प्रस्तुत करवा कर श्रीपञ्चतत्त्वको समर्पण किया।

शंख और घंटा बज उठे। वैष्णवजन झाँझ, करताल और मृदंग लेकर श्रीमन्महाप्रभुके सामने भोगारतिका गान करने लगे। धीरे-धीरे बहुतसे

वैष्णव जम गये। बड़े समारोहके साथ भोग सम्पन्न हुआ। प्रसाद पाने के लिये नाट्य मंदिरका स्थान स्थिर हुआ। 'हरेर्नाम' की उच्च-ध्वनिको सुनकर अपना-अपना जलपात्र लेकर सभी वैष्णव एकत्र हुए। प्रसाद पानेके समयकी कविताएँ जोर-जोरसे पढ़ी जाने लगीं। सबने प्रसाद पाना आरंभ किया। ब्रजनाथ और विजयकुमार महा-महाप्रसाद (गुरु-वैष्णवजनोंके उच्छिष्ट-प्रसाद) की आशासे अभी बैठना नहीं चाहते थे। परन्तु प्रधान-प्रधान बाबाजी महोदयोंने उन दोनोंको बलपूर्वक बैठा कर कहा—'तुम लोग गृहस्थ वैष्णव हो, तुम्हारे चरणोंमें दण्डवत् प्रणाम करनेसे हम धन्य होंगे।'

विजयकुमार और ब्रजनाथ हाथ जोड़कर नम्रता-पूर्वक बोले—'आप लोग महान्त त्यागी वैष्णव हैं। आप लोगोंका अधरामृत (जूठन) पाना ही हमारे लिये सौभाग्यकी बात है। आप लोगोंके साथ बैठने से हमें अपराध लगेगा।'

वैष्णवोंने कहा—'वैष्णवतामें गृहस्थ और गृह-त्यागीका कोई भेद नहीं। भक्तिके परिमाणके अनुसार ही वैष्णवका तारतम्य होता है। अर्थात् भगवान्के प्रति जिसको अधिक भक्ति है, वही अधिक उन्नत वैष्णव है।'

इस प्रकार कहते-सुनते सभी एक ही साथ प्रसाद पाने बैठे। सभी प्रसाद पाने लगे। परन्तु विजय कुमार और ब्रजनाथ श्रद्धापूर्वक प्रसादको सामने रखकर भी चुपचाप बैठे रहे। प्रसाद पाते-पाते कुछ वैष्णवोंकी दृष्टि उन पर पड़ी। वे दोनोंके चुपचाप बैठनेका कारण समझकर रघुनाथदास बाबाजीसे बोले—वैष्णव प्रवर! आप अपने श्रद्धालु शिष्यों पर कृपा करें, नहीं तो ये प्रसाद नहीं पा रहे हैं।'

वैष्णवोंका अनुरोध सुनकर वृद्ध बाबाजीने अपने प्रसादमें से कुछ उठाकर दिया। दोनों परम श्रद्धाके साथ गुरुदेवके दिये हुए प्रसादको ग्रहण कर 'श्रीगुरवे नमः' उच्चारण कर प्रसाद पाने लगे। बीच-बीचमें 'साधु सावधान' और प्रसाद-माहात्म्यसूचक ध्वनि पड़ने लगी। अहा! उस समय श्रीवास-अङ्गनके नाट्य मंदिरमें क्या ही अपूर्व शोभा उदित हुई! सबने देखा, श्रीशची, सीता और मालिनीदेवी प्रसाद ला रहीं हैं और श्रीमन्महाप्रभु अपने प्रियजनों के साथ बैठकर बड़े प्रेमसे प्रसाद पा रहे हैं। इसे देखकर वैष्णव प्रसाद पाना भूल गये, प्रसादको लिये हुए उनके हाथ जहाँके तहाँ रह गये। जब तक यह लीला प्रकट रही, सब लोग अचेतन सा दर्शन करते रहे। आँखोंसे आनन्दके आँसू चुपचाप झरने लगे। कुछ ही देरमें लीला आँखोंसे ओझल हो गयी। अब सभी एक-दूसरे की ओर देखकर रोने लगे। उस समय प्रसादका ऐसा मधुर स्वाद हुआ जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता।

सबने एक स्वरसे कहा—'ये दोनों ब्राह्मण कुमार श्रीमन्महाप्रभुके नितान्त कृपापात्र हैं। इसीलिये आज इनके महोत्सवमें गौर-लीला का पुनः आविर्भाव हुआ।'

ब्रजनाथ और विजयकुमार रोते-रोते बोले—हम बड़े ही दीन-हीन अकिंचन हैं, हम कुछ भी नहीं जानते हैं—आज श्रीगुरुदेव और वैष्णवजनों की अहैतुकी कृपासे हम यह सब देख सके हैं। आज हमारा जन्म लेना सार्थक हुआ।'

प्रसाद पानेके पश्चात वैष्णवजनोंकी आज्ञा लेकर विजय और ब्रजनाथ घर लौटे।

अब दोनों प्रतिदिन गंगा-स्नान कर गुरुदेवको दण्डवत-प्रणाम करते हैं। भगवत् विग्रहका दर्शन करते हैं, भगवन्मंदिर और तुलसीकी परिक्रमा करते हैं। इस प्रकार रोज कुछ न कुछ शिक्षा करते हैं। चार-पाँच दिन बीत गये। एक दिन शामको ये दोनों श्रीवास अंगनमें उपस्थित हुए। सांध्य-आरती और नाम-संकीर्त्तन हो चुका था। श्रीरघुनाथदास बाबाजी अपनी कुटीमें बैठकर मधुर-स्वरसे धीरे-धीरे नाम जप कर रहे थे। इसी समय दोनोंने बाबाजीके चरणों में दण्डवत् प्रणाम किया। बाबाजीने बड़े प्रेमसे

उनके सिर पर अपना कर-कमल रखकर कुशल-क्षेम पूछनेके पश्चात् बैठाया।

सुयोग देख कर ब्रजनाथ बोले—'प्रभो! आपकी कृपासे हम वैधीभक्तिसाधनको अच्छी तरह समझ गये हैं। अब कृपा कर हमें रागानुगा भक्तिके सम्बन्धमें उपदेश प्रदान करें। रागानुगा भक्तिको समझनेकी हमें तीव्र लालसा हो रही है।'

ऐसा सुनकर बाबाजी बड़े आनन्दित हुए और बोले—श्रीगौरचन्द्रने तुम दोनोंको अपनालिया है। तुम लोगोंके लिये कुछ भी अदेय नहीं है। सावधान होकर सुनना, मैं रागानुगा भक्तिकी व्याख्या कर रहा हूँ—

सबसे पहले मैं उन श्रीरूप गोस्वामीके चरण-कमलोंको बार-बार प्रणाम करता हूँ, जिनको श्रीमन्महाप्रभुने मुसलमान-संगसे उद्धार कर प्रयागमें रस-तत्त्वकी शिक्षा दी थी। जिनको उन्हीं परम करुणामय श्रीगौराङ्ग महाप्रभुजीने विषयगर्तसे उद्धार कर श्रीस्वरूप दामोदर प्रभुके हाथ समर्पण कर सर्व सिद्धियाँ प्रदान की थीं, उन ब्रज-रसके भ्रमर श्रीरघुनाथ दास गोस्वामीके चरणोंमें शरण ले रहा हूँ। रागनुगा भक्तिका विवेचन करनेके पहले रागात्मिका-भक्तिका स्वरूप बतलाना आवश्यक है।'

ब्रजनाथ—'मैं सबसे पहले यह जानना चाहता हूँ कि 'राग' किसे कहते हैं?'

बाबाजी—'विषयी पुरुषको स्वाभाविक विषय-संसर्गसे विषयोंके प्रति अनेक आकारोंमें जो अत्यधिक प्रीति होती है, उसे राग कहते हैं; जैसे सौन्दर्य देख कर आखें जिस प्रकार अधीर हो उठती हैं, उसी प्रकार। यहाँ विषयके प्रति 'रंजकता' रहती है और हृदयमें 'राग'। जब श्रीकृष्ण उस रागके एकमात्र विषय हो जाते हैं, तब उस रागको 'रागभक्ति' कहते हैं। श्रीरूप गोस्वामीने 'राग' की परिभाषा इस प्रकार की है—इष्टके विषयमें स्वारसिकी परमा-आविष्टताको 'राग' कहते हैं; कृष्णभक्ति जब इस रागमयी अवस्थाको प्राप्त हो जाती है, तब उस भक्तिको 'रागात्मिका भक्ति' कहते हैं। संक्षेपमें ऐसा कह सकते हैं कि कृष्णके प्रति प्रेममयी तृष्णाको 'रागात्मिका-भक्ति' कहते हैं। जिसके हृदयमें ऐसा 'राग' उदित नहीं हुआ है, उसे शास्त्रीय-विधियोंके आचरण द्वारा ही भक्ति लाभ करनेका प्रयत्न करना श्रेयस्कर है। वैधी भक्तिमें संभ्रम (गौरव-बुद्धि), भय और श्रद्धा कार्य करते हैं। कृष्णलीलाके प्रति लोभ ही रागात्मिका भक्तिमें कार्य करता है।'

ब्रजनाथ—'रागमयी भक्तिका अधिकारी कौन है?'

बाबाजी—'वैधी-श्रद्धा जैसे वैधी भक्तिका अधिकार प्रदान करती है, उसी प्रकार लोभमयी श्रद्धा रागात्मिका-भक्तिका अधिकार प्रदान करती है। ब्रजवासियोंका श्रीकृष्णके प्रति भाव ही रागात्मिका भक्तिका सर्वश्रेष्ठ उदाहरण है। ब्रजवासियोंके श्रीकृष्णके प्रति भावको लक्ष्यकर, उसे प्राप्त करनेके लिये जिस सौभाग्यशाली पुरुषको लोभ होता है, वे रागानुगा-भक्तिके अधिकारी हैं।'

ब्रजनाथ—'उस लोभका लक्षण क्या है?'

बाबाजी—'ब्रजवासियोंके परम मधुर भावोंको सुनकर उसमें प्रवेश करनेके लिये बुद्धि जिसकी अपेक्षा करती है, वही उस लोभके उत्पन्न होनेका लक्षण है। वैधी-भक्तिका अधिकारी पुरुष कृष्ण-कथा सुनकर उसे बुद्धि, शास्त्र और युक्तिकी कसौटी पर कसता है। और इन तीनोंके साथ उस कृष्ण-कथाकी संगति बैठने पर ही वह आगे बढ़ता है। परन्तु राग-मार्गमें ऐसी बात नहीं है। इस मार्गमें बुद्धि, शास्त्र और युक्तिकी अपेक्षा नहीं होती, अपेक्षा होती है केवल ब्रजवासी-जनोंके भावके प्रति लोभ की। ब्रजवासियोंका कृष्णके प्रति कैसा मधुर भाव था, क्या मुझे वैसा ही भाव प्राप्त हो सकता है, कैसे वह भाव प्राप्त हो, इसलिये छटपटाहट होती है—ऐसी छटपटाहट या तीव्र लालसा भी उक्त लोभका लक्षण है। ऐसा लोभ हुए बिना रागानुगा-भक्तिमें अधिकार नहीं हुआ है—समझना चाहिए।'

ब्रजनाथ—'रागानुगा भक्तिकी प्रक्रिया क्या है?'

बाबाजी—'साधकका जिस ब्रजवासी (गोप या

गोपी) के सेवा-सौन्दर्यके प्रति लोभ हुआ है, उसे वह सर्वदा स्मरण करे एवं उसके प्रिय श्रीकृष्णकी और उस व्रजवासी (गोप या गोपी) की परस्पर लीला-कथाओंमें निरत हुआ स्वयं शरीरसे अथवा मनसे सर्वदा व्रजमें निवास करे। उस भावको पानेके लोभसे अपने अभिलषित व्रजवासीका अनुसरण करता हुआ सब समय दो प्रकारकी सेवा करे, अर्थात्, बाहरसे साधक रूपमें सेवा करे और अन्तरमें सिद्धदेह भावना पूर्वक सेवा करे। यही रागानुगा भक्तिकी प्रक्रिया है।'

व्रजनाथ—'वैधीभक्तिके अङ्गोंके साथ रागानुगा भक्तिका क्या सम्बन्ध है ?'

बाबाजी—वैधी-भक्तिके श्रवण-कीर्त्तन आदि जो सब अङ्ग बतलाये गये हैं, वे सभी अङ्ग रागानुगा-साधककी साधनामें भी वर्त्तमान रहते हैं। साधक व्रजजनोंके अनुगत होकर जिस समय नित्य सेवानन्दका आस्वादन करता है, उसके बाह्य शरीरमें वैधी भक्तिके अङ्ग-समूह लक्षित होते हैं।

व्रजनाथ—'रागानुगाभक्तिकी महिमा बतलाइए।'

बाबाजी—'वैधी भक्तिके अङ्गोंका निष्ठाके साथ बहुत दिनोंतक पालन करने पर भी जो फल नहीं होता है, रागानुगाभक्ति द्वारा वह फल थोड़े ही समयमें पाया जाता है। वैध-मार्गकी भक्ति विधिके सापेक्ष (अपेक्षा रखने वाली) होनेके कारण दुर्बला होती है और रागानुगाभक्ति सम्पूर्ण निरपेक्षा होनेके कारण स्वभावतः प्रबला होती है। अतएव व्रजके प्रेमीजनोंके आनुगत्याभिमान-लक्षण-भाव द्वारा जो राग उदित होता है, उसमें श्रवण, कीर्त्तन, स्मरण, पादसेवन, वंदन और आत्मनिवेदन रूप प्रक्रिया सर्वदा अवलम्बित होती है। जिनका हृदय निर्गुण होता है, उन्हींको व्रजजनोंके आनुगत्यमें रुचि पैदा होती है। इसलिये रागानुगाभक्तिके प्रति लोभ बड़ा ही दुर्लभ परन्तु परम श्रेयः का मूल है। रागात्मिका भक्ति जितने प्रकारकी होती है, रागानुगाभक्ति भी उतने ही प्रकारकी होती है।'

व्रजनाथ—'रागात्मिकाभक्ति कितने प्रकारकी होती है ?'

बाबाजी—'रागात्मिकाभक्ति दो प्रकारकी होती है—कामरूपा और सम्बन्ध-रूपा।'

व्रजनाथ—'कामरूपा और सम्बन्धरूपाका भेद बतलाइये।

बाबाजी—'श्रीमद्भागवतमें कहते हैं—

कामाद्-द्वेषाद्-भयात् स्नेहाद् यथा भक्त्येश्वरे मनः।
आवेश्य तदघं हित्वा बहवस्तद्-गतिं गताः॥
गोप्यः कामाद् भयात् कंसो द्वेषाच्चैद्यादयो नृपाः।
सम्बन्धाद् वृष्णयः स्नेहाद्यूयं 'भक्त्या वयं विभो॥
(श्रीमद्भा० ७।१।२९ ३०)

इसका तात्पर्य यह है कि कामसे, द्वेषसे, भयसे और स्नेहसे अपने मनको भक्तिमें आविष्ट कर उन-उन भावोंके दोषोंका त्यागकर अनेकों मनुष्य भगवद्-गतिको प्राप्त हुए हैं। गोपियोंने कामसे, कंसने भयसे, शिशुपाल आदि राजाओंने द्वेषसे, यदुवंशियोंने परिवारके सम्बन्धसे, तुम पाण्डवोंने स्नेहसे और हम ऋषियोंने (नारद आदि ऋषियोंने) भक्तिसे अपने मनको भगवान्में लगाकर भगवद्गति पायी है।

काम, भय, द्वेष, सम्बन्ध, स्नेह और भक्ति—इन छः में से भय और द्वेष—ये दो अनुकूल भावके विपरीत प्रतिकूल भाव होनेके कारण अनुकरण योग्य नहीं हैं। स्नेह—एक अंशमें सख्यभावसे युक्त होनेके कारण वैधी भक्तिके अन्तर्गत है; दूसरे अंशमें प्रेम भावसे युक्त होनेके कारण साधन-राज्यमें उसकी (स्नेहकी) उपयोगिता नहीं है। इसलिये रागानुगा साधन-भक्तिके अन्दर स्नेहका स्थान नहीं है।

"भक्त्या वयं"—अर्थात् हमलोग भक्तिसे भगवान्को प्राप्त हुए हैं'—इसमें जो भक्ति-शब्द आया है, उससे वैधीभक्तिको समझना चाहिये अर्थात् भक्ति शब्दसे किसी जगह ऋषियों द्वारा अपनायी गयी वैधी-भक्ति और किसी जगह ज्ञान-मिश्रा भक्ति समझना चाहिये।

'तद्गतिं गताः'—अर्थात् बहुतोंने भगवद्गतिको प्राप्त किया है—इस वाक्यका अर्थ अच्छी तरहसे समझ लेना आवश्यक है। किरण और सूर्य जैसे एक

ही वस्तु हैं, उसी प्रकार ब्रह्म और कृष्ण एक ही वस्तु हैं। कृष्णकी अंगज्योतिका नाम ही ब्रह्म है। ज्ञानी-भक्त ब्रह्ममें लय प्राप्त होते हैं; कृष्णके शत्रु भी कृष्ण द्वारा मारे जाकर ब्रह्ममें ही प्रवेश करते हैं। इनमेंसे कोई-कोई सारूप्याभास प्राप्त होकर ब्रह्मसुखमें मग्न रहते हैं। ब्रह्माण्ड पुराणके अनुसार ये मायाके उस-पार सिद्धलोकमें निवास करते हैं। सिद्धलोकमें दो प्रकारके जीव निवास करते हैं—एक ज्ञानसिद्धि प्राप्त जीव, दूसरे भगवान् द्वारा मारे गये असुर। ज्ञान-सिद्धोंमेंसे कोई-कोई सौभाग्यवश पूर्वोक्त 'राग' का आश्रय कर श्रीकृष्णके चरणकमलोंका भजन करते-करते कृष्ण-प्रेम लाभ करते हैं और भगवान्के प्रिय जनोंकी श्रेणीमें आ जाते हैं। जैसे किरण और सूर्य एक ही वस्तु है, उसी प्रकार कृष्णकिरण-स्वरूप-ब्रह्म और कृष्णमें वस्तुतः भेद नहीं है। 'तद्गति'—शब्दका अर्थ कृष्णगति है। सायुज्यमुक्तिको प्राप्त हुए ज्ञानी और असुर दोनों ही कृष्ण-किरण स्वरूप ब्रह्म को प्राप्त होते हैं। शुद्ध भक्तजन प्रेम द्वारा मूल वस्तु श्रीकृष्णकी सेवा प्राप्त करते हैं। अब भय, द्वेष, स्नेह और भक्ति—इन चारोंको निकाल देनेसे काम और सम्बन्ध दो बच रहते हैं। इसलिये रागमार्गमें काम और सम्बन्ध दो भाव ही कार्य करते हैं। अतः रागमयी भक्ति दो ही प्रकारकी होती है—कामरूपा और सम्बन्धरूपा।'

व्रजनाथ—'कामरूपा भक्तिका स्वरूप बतलाइये।'

बाबाजी—'काम'-शब्दसे संभोग-तृष्णाका बोध होता है; संभोग-तृष्णाका स्वरूप रागात्मिका भक्तिके स्वरूपमें बदलनेसे उसमें अहैतुकी प्रीतिमय स्वभाव उदित होता है अर्थात् प्रीति-संभोग कृष्ण-तृष्णामयी होता है—कृष्णके सुख-समृद्धिके लिये ही अखिल चेष्टाएँ होती हैं और अपने सुखकी चेष्टासे रहित होती हैं, यदि अपने सुखकी चेष्टा रहती भी है, तो वह कृष्णकी सुख-समृद्धिके लिये ही स्वीकृत होती है। यह अपूर्व प्रेम केवल व्रजाङ्गनाओं-में ही विराजमान होता है। व्रजगोपियोंका यह प्रेम एक अत्यन्त आश्चर्यजनक माधुरी लाभ कर उन-उन क्रीड़ाओंको उत्पन्न करता है। इसलिये प्रेम-विशेष तत्त्वको पण्डितजन 'काम' कहते हैं। वास्तव में व्रजबालाओंका काम अप्राकृत और दोष-गंधसे सर्वथा रहित होता है। बद्धजीवका काम सदोष और तुच्छ होता है। व्रजगोपियोंका प्रेम इतना विशुद्ध और सर्वाकर्षक होता है कि उद्धव जैसे भगवान्के परम प्रियजन भी उसे पानेकी लालसा करते हैं। व्रज-गोपियोंके 'काम' की तुलनाका कोई दूसरा स्थल ही नहीं, केवल यही काम अपनी तुलनाका स्थल है। 'कामरूपा' रागात्मिका-भक्ति व्रजके अतिरिक्त और कहीं भी नहीं देखी जाती। मथुरामें कुब्जाका जो काम देखा जाता है, वह वास्तवमें काम नहीं—रति मात्र है, जिस कामका यहाँ विवेचन हुआ है, उससे कुब्जाका कोई सम्बन्ध नहीं है।'

व्रजनाथ—'सम्बन्ध रूपा'—भक्ति कैसी होती है ?'

बाबाजी—'मैं कृष्णका पिता हूँ, 'मैं कृष्णकी माता हूँ'—इत्यादि अभिमानसे जो कृष्ण भक्ति होती है, उसे 'सम्बन्धरूपा' भक्ति कहते हैं।' व्रजमें नन्द-बाबा और यशोमती मैया 'सम्बन्धरूपा' भक्तिके उदाहरण स्थल हैं। जैसा भी हो, काम और सम्बन्ध भावसे शुद्ध प्रेमका स्वरूप पाया जाता है। इसलिये ये दोनों भाव नित्यसिद्ध भक्तोंके आश्रय हैं। रागा-नुगा भक्तिके विवेचनमें इनका केवल उल्लेख मात्र किया गया। अब देखो, 'कामानुगा' और सम्बन्धा-नुगाके भेदसे दो प्रकारकी रागानुगा-साधन भक्ति होती है।'

व्रजनाथ—'कामानुगा और रागानुगा साधन भक्तिके सम्बन्धमें बतलाइये।'

बाबाजी—'कामरूपा-भक्तिकी अनुगामिनी तृष्णा को ही कामानुगा कहते हैं, यह दो प्रकारकी होती है—संभोगेच्छामयी और तत्तद्भावेच्छामयी।'

व्रजनाथ—'संभोगेच्छामयी कैसी होती है ?'

बाबाजी—'संभोगेच्छामयी केलि-तात्पर्यमयी होती है। 'केलि' का अर्थ क्रीड़ासे है। व्रजदेवियोंके

साथ कृष्णकी अप्राकृत क्रीडाको ही 'संभोग' कहते हैं।'

ब्रजनाथ—'तत्तद्भावेच्छामयी कैसी होती है ?'

बाबाजी—'ब्रज-यूथेश्वरियोंका कृष्णके प्रति जो मधुर भाव होता है, वैसे ही मधुर भावकी जो कामना होती है, उसे तत्तद्भावेच्छात्मिका कहा जा सकता है।'

ब्रजनाथ—'यह दो प्रकारकी रागानुगा-साधन भक्ति कैसे उदित होती है ?'

बाबाजी—'श्रीकृष्णमूर्त्तिकी माधुरीका दर्शन कर एवं श्रीकृष्णकी मधुर लीला-कथाओंका श्रवण कर उन भावोंके लिये जिनके हृदयमें तीव्र लालसा होती है, वे लोग ही कामानुगा और सम्बन्धानुगा रागानुगा भक्तिके साधनमें प्रवृत्त होते हैं।'

ब्रजनाथ—'श्रीकृष्ण पुरुष हैं, ब्रजदेवियाँ प्रकृति अर्थात् स्त्री हैं—केवल स्त्रियोंका ही रागानुगा भक्तिमें अधिकार देख रहा हूँ; पुरुषोंको यह भाव कैसे हो सकता है ?'

बाबाजी—'जगत्में वर्त्तमान रहनेवाले जीव अपने-अपने स्वभाव-भेदके अनुसार पाँच प्रकारके रसोंके आश्रय होते हैं। ये पाँच रस हैं—शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य और मधुर। इनमेंसे दास्य, सख्य, वात्सल्य और मधुर—इन चार रसोंके आश्रय ब्रजवासीजन हैं। दास्य, सख्य और पितृत्व अभिमानी वात्सल्य—ये तीन रस पुरुषोंके भाव हैं। जिनकी इन रसोंमें प्रवृत्ति होती है, वे पुरुष भावसे कृष्णकी सेवा करते हैं। माताका वात्सल्य और शृंगार—ये दो स्त्री-भाव-युक्त रस हैं। जिनका चित्त इन दो रसों द्वारा विभावित होता है, वे स्त्री भावसे कृष्णकी सेवा करते हैं। सिद्धजनोंमें जैसे स्त्री और पुरुष स्वभाव अलग-अलग हैं, उसी प्रकार उनके अनुगत साधकोंमें ये दोनों भाव पृथक्-पृथक् होते हैं।'

ब्रजनाथ—'पुरुष किस प्रकारसे ब्रजदेवियोंके भावसे (स्त्री-भावसे) साधन करेंगे ?'

बाबाजी—'अधिकार-भेदसे जिनको शृङ्गाररसमें रुचि हुई है, वे स्थूल शरीरसे पुरुष होने पर भी सिद्ध-शरीरमें स्त्री-आकारमें होते हैं। रुचि और स्वभावके अनुसार वे जिस गोपीके अनुगत होनेके योग्य हों, उसके अनुगत होकर अपने सिद्ध शरीरसे कृष्णकी सेवा करें। पद्मपुराणमें पुरुषोंके ऐसे भावका वर्णन मिलता है। जैसे—दण्डकारण्यवासी महर्षिगण श्रीरामचन्द्रका परम सुन्दर रूप देख कर पति भावसे उनका भजन किये थे। वे महर्षिगण ही श्रीगोकुल लीलामें स्त्रीत्व लाभ कर (गोपी शरीरमें) कामरूपा-रागमयी भक्ति द्वारा हरि-सेवा किये थे।'

ब्रजनाथ—'हमने सुना है, गोकुलकी स्त्रियाँ नित्यसिद्धा हैं, वे कृष्ण-लीलाकी पुष्टिके लिये ब्रजमें अवतीर्ण होती हैं। ऐसी दशामें पद्मपुराणके वर्णनकी संगति कैसे हो सकती है ?'

बाबाजी—'नित्यसिद्धोंका श्रीकृष्णकी रासलीलामें सहज ही गमन हुआ था। परन्तु कामरूपा साधन भक्ति द्वारा सिद्ध होने पर जिनका गोपीके रूपमें जन्म हुआ था वे, 'वार्यमाणाः पतिभिः (भा० १०। २९।८) (क) श्लोकके अनुसार कृष्णकी मानस-सेवा कर अप्राकृत (जड़से परे चिन्मय) स्वरूप प्राप्त की थीं; ये गोपियाँ अधिकांश दण्डकारण्यके महर्षि ही थे।'

ब्रजनाथ—'नित्यसिद्धा गोपियाँ कौन हैं ? एवं साधनसिद्धा किनको कहा जा सकता है ?'

बाबाजी—'श्रीमती राधाजी श्रीकृष्णकी स्वरूप-शक्ति हैं। उनका पहला कायव्यूह—अष्टसखियाँ हैं; और दूसरी सखियोंको उनका क्रमशः आगे-आगे वाला काय-व्यूह समझना चाहिए। ये सब सखियाँ नित्यसिद्धा हैं। ये जीवशक्तिगत तत्त्व नहीं—स्वरूप-

(क) पूरा श्लोक इस प्रकार है—ता वार्यमाणाः पतिभिः पितृभिर्भ्रातृबन्धुभिः। गोविन्दापहृतात्मानो न न्यवर्त्तन्त मोहिताः॥ अर्थात् पति, पिता-माता और भाई-बन्धुके मना करने पर भी (नित्यसिद्धा) गोपियाँ रुकी नहीं, क्योंकि उनका चित्त श्रीगोविन्द द्वारा चुरा लिये जानेसे वे मोहित हो गयी थीं।

शक्तिगत तत्त्व हैं। व्रजकी सामान्या (साधारण) सखियाँ जो साधन द्वारा सिद्ध होकर श्रीमती राधाके परिकरोंके अनुगत होती हैं, वे साधन-सिद्ध जीव हैं। ह्लादिनी शक्तिका बल पाकर ये व्रजकी नित्यसिद्धाओं के साथ सालोक्य प्राप्त की हुई होती हैं। जो जीव रागानुग मार्गसे शृङ्गाररसकी साधना कर सिद्धिको प्राप्त करेंगे, वे उन साधन सिद्धा सखियोंकी श्रेणी प्राप्त होंगे। इनमें जो रिरंसा अर्थात् कृष्णके साथ रमण करनेकी इच्छासे केवल विधिमार्गमें सेवा करती हैं, वे द्वारकापुरीमें महिषी (रानी) की श्रेणी लाभ करेंगी। विधिमार्गसे व्रजदेवियोंका आनुगत्य लाभ नहीं किया जा सकता। परन्तु जो अन्तःकरण द्वारा रागमार्ग और शरीरसे विधिमार्गका आचरण करती हैं, वे व्रजसेवा ही प्राप्त करती हैं।'

व्रजनाथ—' 'रिरंसा' अर्थात् रमणकी वासना किस प्रकार पूरी की जा सकती है ?'

बाबाजी—'जिनको कृष्णके प्रति महिषीभाव अच्छा लगता है, वे धृष्टता छोड़ कर गृहिणीकी तरह कृष्णकी सेवा करना चाहती हैं; वे व्रज-सुन्दरियोंकी तरह सेवा नहीं करना चाहतीं।

व्रजनाथ – 'कृपया इस विषयको और भी स्पष्ट कीजिये।'

बाबाजी—'कृष्णको अपना पति मान कर जो सेवा-साधना होती है उसे 'महिषी भाव' कहते हैं। महिषीभाव प्राप्त होने पर उन्हें 'स्वकीया' भी कहते हैं। साधनकालमें जिनको स्वकीया अर्थात् महिषी-भाव रहता है, वे व्रजदेवियोंके पारकीय रसका अनुभव नहीं कर पातीं और इसीलिये वे पारकीय-भावयुक्त व्रजदेवियोंका अनुगमन करनेमें असमर्थ होती हैं। अतएव पारकीय भावसे रागानुगा भक्तिका साधन करना ही व्रजरस प्राप्तिका हेतु है।'

व्रजनाथ—'आपकी कृपासे मैं यहाँ तक तो समझ गया। अब कृपया यह बतलाइये कि 'काम' और प्रेम में क्या भेद है ? यदि इनमें कोई भेद नहीं है, तो 'कामरूपाके' बदले 'प्रेमरूपा' कहनेसे क्या काम नहीं चलता ? 'काम'-शब्द सुननेमें जरा, कटु लगता है।'

बाबाजी—'काम और प्रेममें कुछ भेद है। प्रेम कहनेसे उसका सम्बन्धरूपा रागमयी-भक्तिसे कोई अन्तर नहीं रह जाता; दोनों एक हो जाती हैं। सम्बन्ध-रूपा भक्तिमें 'काम' अर्थात् संभोगकी इच्छा नहीं होती। सम्बन्धरूपा भक्ति केलि-तात्पर्य-मयी भी नहीं होती, फिर भी वह प्रेम है। प्रेममें संभोगकी इच्छारूप एक प्रवृत्ति संयुक्त होनेपर वह भक्ति 'कामरूपा' कहलाती है। दूसरे-दूसरे रसोंमें कामरूपा भक्ति नहीं होती। कामरूपा भक्ति एकमात्र शृंगार रसमें ही होती है और वह भी केवल व्रजदेवियोंमें ही। संसारमें इन्द्रिय-प्रीतिरूप जो काम है, वह इस अप्राकृत कामसे पृथक है। इस जगतमें जो काम है, वह इस निर्दोष अप्राकृत कामका ही विकार है। कुब्जाका भाव कृष्णके प्रति नियुक्त होनेपर भी उसे 'साक्षातकाम' नहीं कहा जा सकता। इन्द्रिय-तृप्तिकर जड़ीय काम जैसे तुच्छ और परिणाममें दुःखकर होता है, प्रेमाङ्गका काम वैसे ही आनन्द पूर्ण, परम उपादेय और नित्य सुखकर होता है। 'प्राकृत काम' तुच्छ और दोष पूर्ण होनेसे 'अप्राकृत काम' शब्दका व्यवहार करनेमें किसी प्रकारका संकोच नहीं होना चाहिए।

व्रजनाथ—'अब सम्बन्धरूपा रागानुगा-भक्तिकी व्याख्या कीजिये।'

बाबाजी—'अपनेमें कृष्णके माता-पिता आदि सम्बन्धोंका आरोप करनेका नाम 'सम्बन्धानुगा'-भक्ति है; इसमें दास्य सख्य और वात्सल्य—इन तीन रसोंकी क्रियाएँ हो सकती है। मैं सेवक हूँ, कृष्ण प्रभु हैं; मैं कृष्णकी विवाहिता पत्नि हूँ, कृष्णका सखा हूँ, मैं कृष्णका पिता या माता हूँ—ये सब सम्बन्ध हैं। सम्बन्धानुगाभक्ति व्रजवासियोंमें ही अतिशय निर्मल रूपमें होती है।'

व्रजनाथ—'दास्य, सख्य और वात्सल्यमें रागा-नुगा भक्तिका किस प्रकारसे अनुशीलन होता है ?'

बाबाजी—'जिनकी दास्य-रसमें रुचि हो, वे रक्तक, पत्रक आदि नित्यसिद्धि दासोंके अनुगत होकर उनके मधुर भावों—व्यवहारोंका अनुकरण

पूर्वक कृष्णकी सेवा करेंगे। जिनकी रुचि सख्य रसमें हो, वे कृष्णके प्रिय-सखा सुबल आदिमें से किसी एक सखाके भावों और चेष्टाओंका अनुकरणपूर्वक कृष्णकी सेवा करेंगे और जिनकी रुचि वात्सल्य रसके प्रति हो, वे नन्द या यशोमतीके भावों और चेष्टाओंका अवलम्बन कर कृष्णकी सेवा करेंगे।'

ब्रजनाथ—'भावों और चेष्टाओंका अनुकरणका तात्पर्य क्या है?'

बाबाजी—'कृष्णके प्रति जिनका जो सिद्धभाव होता है, उसीके अनुसार विशेष-विशेष भावों, और चेष्टाओंका उदय होता है। उन भावों, और चेष्टाओंके साथ ही कुछ बाह्य-क्रियाएँ भी लक्षित होती हैं। सम्बन्धानुगा-भक्ति साधक इन्हीं भावों, चेष्टाओं और क्रियाओं या व्यवहारोंका अनुकरण कर कृष्णकी सेवा करेंगे। उदाहरणके लिये नन्द महाराजका कृष्णके प्रति पिताका भाव है। अब पितृभावसे उनको कृष्णके प्रति जो सब चेष्टाएँ होती हैं, उनका अनुकरण करना चाहिए। परन्तु स्मरण रहे कि 'मैं नन्द हूँ, मैं यशोमती हूँ मैं सुबल हूँ, मैं रक्तक हूँ—ऐसी भावना या चिन्ता कभी नहीं करे; बल्कि अपनी रुचि-भेदसे उन महाजनोंके अनुगत होकर उनके भावोंका ही अनुकरण करे' नहीं तो अपराध हो पड़ेगा।'

ब्रजनाथ—'हमें कौन-सी रागानुगाभक्तिमें अधिकार है?'

बाबाजी—'बाबा! अपने स्वभावके ऊपर विचार करो और उसके अनुसार देखो कि तुम्हारा क्या अधिकार है। स्वभावके अनुसार जैसी रुचि हो, उसीके अनुरूप रस स्वीकार करो। उस रसका अवलम्बन कर उस रसके किसी एक नित्यसिद्ध अधिकारीका अनुगमन करते रहो। इसमें केवल अपनी रुचिकी परीक्षा करनी आवश्यक है। यदि तुम्हारी रुचि रागमार्गमें हो, तो अपनी उस रुचिके अनुसार कार्य करो। जब तक रागमार्गमें रुचि नहीं हो जाती, तब तक केवल विधिमार्गमें निष्ठा रखो।'

विजयकुमार—'प्रभो! मैं बहुत दिनोंसे श्रीमद्भागवतका पाठ करता हूँ, जहाँ कहीं भी होता है श्रीकृष्णकी लीला-कथाओंका श्रवण करता हूँ, जब कभी कृष्ण-लीलाका अनुशीलन करता हूँ, मेरे हृदयमें ऐसा भाव होता है कि मैं श्रीमती ललिता देवीकी तरह युगल-सेवा करूँ।'

बाबाजी—'तुम्हें और कुछ भी कहनेकी आवश्यकता नहीं, तुम श्रीललिताके अनुगत कोई मंजरी हो। तुम्हें कौन-सी सेवा अच्छी लगती है?'

विजय—'मैं चाहता हूँ कि श्रीललितादेवी मुझे पुष्पकी मालाएँ गूँथनेकी आज्ञा दें, मैं सुन्दर-सुन्दर कोमल-कोमल पुष्पोंसे सुन्दर-सुन्दर हार गूँथकर उसे श्रीमती ललिता सखीके कर-कमलमें दूँ और वे मेरे प्रति कृपापूर्ण हास्यभरी चितवनसे देखकर उस पुष्प-हारको राधा-कृष्णके गलेमें डाल दें।'

बाबाजी—'तुम्हारी वैसी सेवा-साधना सिद्ध हो—मैं आशिर्वाद करता हूँ।' बाबाजीका स्नेहपूर्ण आशिर्वाद सुनकर विजयकुमारकी आँखें उमड़ आयीं। वे श्रीगुरुदेव (बाबाजी) के चरणोंमें गिरकर रोने लगे।

उनका वैसा भाव देखकर बाबाजी बोले—'बाबा! तुम निरन्तर उसी भावसे रागानुगा-भक्तिका साधन करो और बाहरसे वैधीभक्तिके साधन-अङ्गोंका नियमितरूपसे आचरण करते रहो।

विजयकुमारकी सम्पत्ति देखकर ब्रजनाथ हाथ जोड़कर नम्रतापूर्वक बोले—'प्रभो! मैं जब कभी श्रीकृष्ण-लीलाका अनुशीलन करता हूँ, मेरा सुबलके अनुगत रहकर कृष्णकी सेवा करनेको जी चाहता है।'

बाबाजी—'तुम्हें कौन-सी सेवा अच्छी लगती है?'

ब्रजनाथ—'जब बछड़े चरते-चरते दूर निकल जाते हैं, तब सुबल सखाके साथ उन बछड़ोंको लौटा लाना मुझे बड़ा अच्छा लगता है। कृष्ण एक जगह बैठकर वंशी बजाते रहें और मैं सुबलकी आज्ञासे बछड़ोंको जल पिला कर भैया कृष्णके निकट ला दूँ—ऐसी मेरी इच्छा होती है।'

बाबाजी—'मैं आशिष करता हूँ—तुम सुबलके

अनुगत होकर कृष्ण-सेवा करो; तुम सख्य रसके अधिकारी हो।'

आश्चर्यकी बात हुई। उसी दिनसे विजयकुमारके चित्तमें श्रीमती ललिताकी दासी होनेका भाव उपस्थित हो गया; वे वृद्ध बाबाजीका श्रीललिताके रूपमें दर्शन करने लगे।

विजयकुमार बोले—'प्रभो! इस विषयमें और क्या जाननेको बाकी है, कृपया आज्ञा करें?'

बाबाजी—'और कुछ भी बाकी नहीं है, केवल तुम्हारे सिद्ध-शरीरके नाम, रूप, वसन आदि तुम्हें जानने आवश्यक हैं। तुम कभी अकेले आना, मैं बतला दूँगा।'

'जैसी आज्ञा'—विजयकुमारने दण्डवत्-प्रणाम करते-करते उत्तर दिया।'

ब्रजनाथ भी उस दिनसे बाबाजीको सुबलके रूपमें देखने लगे। बाबाजीने ब्रजनाथसे कहा—'तुम भी किसी समय अकेले मेरे पास आना, मैं तुम्हारा सिद्धनाम, रूप और वसन-भूषण बतला दूँगा।'

ब्रजनाथ दण्डवत्-प्रणाम करते-करते बोले—'जैसी आज्ञा।'

ब्रजनाथ और विजयकुमारने अपनेको कृत-कृतार्थ माना और उसी दिनसे वे परम आनन्दसे रागानुग-मार्गकी सेवामें नियुक्त हो गये। बाहरसे सब कुछ पहले जैसा ही रहा; परन्तु अन्तरका भाव पलट गया। विजयकुमारका बाहरी व्यवहार पुरुष जैसा ही रहा, परन्तु अन्तरमें स्त्री-भाव उदित हो गया। ब्रजनाथके अन्तरमें गोप-बालकका स्वभाव पैदा हो गया।

रात अधिक हो गयी थी। दोनों हरिनामकी माला पर 'हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे॥'—गुरुके दिये हुए इस नाम रूप महामंत्रका गान करते-करते घर लौटे। रातके बारह बजे हैं। चन्द्रकी चारु चान्द्रिकाएँ पृथ्वी पर मानो रजत-राशिकी वर्षा कर रहीं थीं। मन-मोहक मलयानिल मस्त होकर बह रहा था। लक्ष्मण-टीलेके पास सुन्दर और निर्जन स्थानमें एक आँवलाके पेड़के नीचे बैठ कर दोनों परस्पर बात-चीत करने लगे।

विजयकुमार—'ब्रजनाथ! हमारे मनकी साधें पूर्ण हुईं। वैष्णवोंकी कृपासे हम पर अवश्य ही श्रीकृष्णकी कृपा होगी। अब यह विचार करना है कि हमें आगे क्या करना है? ब्रजनाथ! तुम सरल चित्तसे मुझे यह बतलाओ कि तुम क्या करना चाहते हो? विवाह करोगे या परिव्राजक (संन्यासी) बनोगे? मैं इस विषयमें तुम पर किसी प्रकारका दबाव नहीं देना चाहता। तुम्हारी माँको समझानेके लिये केवल तुम्हारे मनकी बात भर जानना चाहता हूँ।'

ब्रजनाथ—'मामा! आप मेरी भक्तिके पात्र हैं; तिस पर भी पण्डित और वैष्णव हैं; पिताजीके अभावमें आप ही घरके मालिक हैं; आप जैसी आज्ञा देंगे, मैं उसी पथ पर चलनेके लिये तैयार हूँ। विवाह करने पर संसारमें आसक्त होकर परमार्थसे च्युत न हो जाऊँ, इसीलिये विवाहसे जी घबड़ाता है। आपका क्या विचार है?'

विजय—'मैं इस विषयमें तुम पर कोई दबाव नहीं डालना चाहता; तुम खुद ही विचार कर बतलाओ।'

ब्रजनाथ—'मेरे विचारसे श्रीगुरुदेवकी आज्ञा लेकर कार्य करना अच्छा है।'

विजय—'अच्छी बात है। कल प्रभुपादसे इस विषयकी आज्ञा लूँगा।'

ब्रजनाथ—मामा! आपका विचार क्या है? आप गृहस्थ बनेंगे अथवा परिव्राजक?'

विजय—'बाबा! मेरा भी तुम्हारे जैसा ही अभी अस्थिर सिद्धान्त है। कभी सोचता हूँ, गृहस्थ धर्मको तिलाञ्जलि देकर परिव्राजक हो जाऊँ और कभी सोचता हूँ, ऐसा करनेसे कहीं ऐसा न हो कि हृदय शुष्क हो जाय और भक्ति रससे भी वंचित न होना पड़े। इसलिये इस विषयमें श्रीगुरुदेवकी आज्ञाके अनुसार ही कार्य करना अच्छा समझता हूँ। वे जैसी आज्ञा देंगे, वैसा ही करूँगा।'

रात अधिक हुई—जानकर मामा-भगिनेय हरिनाम करते-करते घर लौटे और प्रसाद पाकर सो गये।

इक्कीसवाँ अध्याय समाप्त।

श्रीश्री नवद्वीपधाम परिक्रमा और श्रीगौर-जयन्ती

[गत संख्यासे आगे]

अधिवास

यों तो परिक्रमा आरम्भ होनेके कई दिन पहलेसे ही श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठ (मूल केंद्र), नवद्वीपमें यात्रियोंका आगमन आरम्भ हो चुका था, परन्तु ४ चैत्रके शाम तक २००० से भी अधिक यात्री आ चुके थे। आसपासके स्कूल और गृहस्थोंके घर, मणिपुर राजबाड़ी और मठ-प्राङ्गणके समस्त शिविर यात्रियोंसे भर गया। पेड़ोंके नीचे और खुले मैदानमें भी यात्री पड़ाव डालने लगे।

शामको अधिवास महोत्सव प्रारम्भ हुआ। संध्या-आरतीके पश्चात् हजार-हजार लोगोंकी मिलित कंठ-ध्वनि, शंख-घन्टा-झाँझ-करताल तथा मेघगर्जनको भी मात करनेवाले मृदंगोंके मृदु-गंभीर नादके साथ मिलकर ध्वनि-विस्तरक यंत्रके सहारे श्रीगौड़-मण्डलके आकाशमें परिव्याप्त होकर कलिके घोर-प्रभावको ध्वंश कर भगवद्भावका विस्तार करने लगी। अधिवास कीर्त्तनके पश्चात् जगद्गुरु श्रीश्री आचार्य देवका सारगर्भित भाषण हुआ, जिसमें उन्होंने परिक्रमा-तत्त्व, इसकी उपयोगिता और विधियों पर गहरा प्रकाश डाला। अंतमें अगले दिनका कार्यक्रम घोषित होनेके पश्चात् अधिवास महोत्सव समाप्त हुआ।

परिक्रमा-दैनन्दिनी

पहला दिन—५ चैत्र बृहस्पतिवारको श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठसे परिक्रमा उठी। आगे-आगे रत्न आभूषणोंसे सजी-सजाई पालकीमें श्रीश्रीगुरु-गौरांगजी, अगल-बगल छत्र, चँवर आदि धारण किये उनके सेवक, उनके पीछे संन्यासियोंसे घिरे हुए जगद्गुरु १०८ श्रीश्रीमद् आचार्य देव, उनके पीछे संकीर्त्तन-मण्डल और पश्चात् हजारों यात्रियों और दर्शकों की अपार भीड़। बीच-बीचमें रंग-बिरंगी पताकाएँ परिक्रमा-यात्रियोंको साधारण लोगोंसे अलग सूचित कर रहीं थीं। इस प्रकार महा-संकीर्त्तनके साथ परिक्रमा-संघ वर्त्तमान नवद्वीप शहर (प्राचीन कुलिया) के प्रधान-प्रधान मार्गोंसे गुजरता हुआ पुण्य-सलीला भागरथीको पार कर गोद्रुम (कीर्त्तनाख्य) द्वीप में उपस्थित हुआ। नवधाभक्तिमें कीर्त्तनाख्या भक्तिका स्थान सर्वोपरि है तथा अन्यान्य अंगोंका पालन भी कीर्त्तनाख्या भक्तिके संयोगसे ही अभीष्ट फल प्रदान करता है—यह श्रीलरूप गोस्वामीकी शिक्षा है। दूसरी बात, धाम-परिक्रमाके प्रवर्त्तक श्रीभक्तिविनोद ठाकुरकी चरणधूलि मस्तक पर धारण कर परिक्रमा करनेसे ही परिक्रमाका उद्देश्य सर्वतोभावेन सफल हो सकता है—ऐसा विचार कर ही श्रीगौड़ीयवेदान्त समितिकी परिक्रमा सबसे पहले कीर्त्तनाख्य द्वीपमें श्रीभक्तिविनोद ठाकुरके स्थानसे ही आरंभ होती है।

गोद्रुम द्वीपमें सुरभिकुंज, श्रील भक्तिविनोद ठाकुरकी समाधि, सुवर्ण विहार और दूर से हरिहर क्षेत्रका दर्शन कर परिक्रमा संघ दो पहरमें श्रीनृसिंह देवपल्ली पहुँचा। त्रिदण्डिस्वामी श्रीपाद भक्तिजीवन जनार्दन महाराज, त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त त्रिविक्रम महाराज, त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त परमार्थी महाराज, त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त शुद्धाद्वैती महाराज, त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्तिवेदान्त नारायण महाराज और श्रीपाद रसराज व्रजवासी—ये श्रीश्री आचार्य देवकी

अध्यक्षतामें परिक्रमा संघका संचालन कर रहे थे। सबसे पहले दर्शनीय स्थानकी परिक्रमा की जाती और यात्रियोंके बैठ जाने पर उस धाम-का माहात्म्य बतलाया जाता। तत्पश्चात् हरिकथा और कीर्त्तन होता और पुनः परिक्रमा आगे बढ़ जाती।

श्रीनृसिंह देवपल्लीमें परिक्रमा-संघ पहुँचनेके पहले ही पड़ावकी सारी व्यवस्था पूरी थी। शिविर क्या थे—मानों विराट नगर बस गया था। जल और रोशनी की भी पूरी व्यवस्था की गयी थी। यात्री श्रीनृसिंहदेवका दर्शन कर, स्नान आदिसे निबट कर श्रीश्रीगुरु-गौराङ्ग और श्रीनृसिंह देवके राजभोगोंका दर्शन कर महाप्रसाद भोजन किये। संध्याको आरती-कीर्त्तनके पश्चात् धाम-माहात्म्यका पाठ और श्रीमद्भागवतका प्रवचन हुआ।

दूसरे दिन—६ चैत्रको सबेरे वहाँसे यात्रा कर मध्यद्वीप (स्मरणाख्य) और कोलद्वीपकी गौर-लीला स्थलियोंका दर्शन करता हुआ परिक्रमा-संघ ऋतुद्वीप (अर्चनाख्य) के अन्तर्गत चाँपाहाटी शिविरमें पहुँचा और वहाँ श्रीगौर-गदाधर मठमें श्रीश्रीगौर-गदाधरका दर्शन किया। शामको समुद्र-गढ़के भग्नावशेषका दर्शन किया गया। रातमें श्रीगौर-गदाधर मठके विस्तृत प्राङ्गणमें प्रवचन, कीर्त्तन और भाषण हुआ। चम्पकहट्टकी महिमा श्रीगदाधर-तत्त्व और बाणीनाथ द्वारा श्रीगदाधरकी श्रीमती राधारानी के रूपमें पूजा आदि विषयोंपर श्रीआचार्यदेवने प्रकाश डाला।

तीसरे दिन—७ चैत्रको जह्नुद्वीप (वन्दनाख्य) में जह्नु मुनिके स्थान जान्नगर, श्रीसार्वभौम भट्टाचार्य के स्थान—विद्यानगर और मोदद्रुमद्वीप (दास्याख्य) में व्यासावतार श्रीवृन्दावनदास ठाकुरके आविर्भाव स्थानका दर्शन कर दोपहरमें ब्रह्माणीतलामें एका-दशीका अनुकल्प किया गया। शामको ६ बजे परि-क्रमा-संघ श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठमें लौट आया।

चौथे दिन—८ चैत्रको प्रौढ़ा माया और श्रील जगन्नाथदास बाबाजी महाराजकी समाधिका दर्शन कर और श्रीरुद्रद्वीप (सख्याख्य) की परिक्रमा कर पुनः श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठमें विश्राम।

पाँचवे दिन—९ चैत्रको परिक्रमा बड़े समारोह से उठी। आज सभी लोग श्रीगौरजन्म-स्थली—श्रीधाम मायापुरके दर्शनोंके लिये विशेष उत्सुक जान पड़ते थे। भक्तगण उद्दण्ड नृत्य और कीर्त्तन करते-करते भगवती गंगाको पार कर अन्तर्द्वीप (आत्मनिवेद-नाख्य)—श्रीधाम मायापुर पहुँचे। वहाँ श्रीयोगपीठ मंदिर (श्रीगौर जन्म-स्थान) की परिक्रमा और श्रीश्रीविग्रहोंका दर्शनकर अपना जीवन सार्थक माना। यहाँ एक अकस्मिक घटना हुई। जब श्रीश्री आचार्य देव श्रीयोगपीठ मंदिरसे प्राङ्गणमें अपार यात्रियों के साथ प्रवेश कर रहे थे तो वहाँ पर उनके पूर्वाश्रमके ज्येष्ठ सहोदर भ्राता—जो आजकल गौड़ीय मिशनके अध्यक्ष हैं—मिले। उनके साथ और भी लोग थे। यह भेंट लगभग १२-१४ वर्षोंके पश्चात् हुई थी। सब लोग इस भेंट का महत्व दे रहे थे। श्रील आचार्य देवने अपने पूर्वाश्रमके पितातुल्य पूज्य ज्येष्ठ सहोदर भ्राताको परमाराध्यतम श्रीश्री 'प्रभुपाद' (दोनोंके गुरुदेव) के सिद्धान्तों पर चल कर श्रीमन्महाप्रभुके उपदेशों का जगत्में प्रचार करनेके लिये परामर्श दी। उल्लेख योग्य है कि श्रील आचार्य देवने ही अपनी वीर्यवती वाणीसे अपने इन ज्येष्ठ भ्राताको संन्यास आश्रममें प्रविष्ट करवाया था।

श्रील आचार्यदेवने योगपीठमें विराट जन-समूह के सामने अपने भाषणमें सिंह-गर्जन करते हुए कहा कि परमाध्यतम श्रील प्रभुपादके विचारोंके विरोधी व्यक्ति के साथ उनका कुछ भी सम्बन्ध नहीं, भले ही वह उनका सहोदर ज्येष्ठ भ्राता ही क्यों न हों। लोग कहते हैं-हम दोनोंका मिलन हुआ है, परन्तु मैं देखता हूँ, हम दोनोंमें हजारों मीलकी दूरी है। मिलनके माध्यम एक मात्र प्रभुपाद हैं; श्रील प्रभुपाद-के विचारोंका विरोध या विरोधाभास त्याग न होने तक मिलन कतई संभव नहीं। भाषण ऐसा मर्मस्पर्शी था कि श्रोताओंकी आँखें उमड़ आयीं। पश्चात्

धाम महात्म्य आदि पाठके बाद श्रीवास-आंगन, श्रीअद्वैत भवन, श्रीचैतन्य मठ (श्रीचन्द्रशेखर आचार्यका भवन), श्रील प्रभुपादकी समाधि, श्रील गौरकिशोर दास बाबाजी महाराजकी समाधि, चाँदकाजीकी समाधि आदि दर्शनीय स्थानोंके दर्शनोंके पश्चात परिक्रमा संघ दो पहरमें श्रीजयदेव गोस्वामी-पाट (श्रीनाथपुर) में उपस्थित हुआ। यहाँ पर लगभग ५००० लोगोंको महाप्रसाद दिया गया। यात्रियोंकी सुख-सुविधाके लिये माननीय डा० श्रीयतीन्द्र मोहन सरकारकी चेष्टा अतीव सराहनीय थी। शामके पहले ही परिक्रमा-संघ श्रीदेवानन्द गौड़ीय मठमें लौट आया।

श्रीश्रीगौर-जन्मोत्सव

१० चैत्रको श्रीगौर जयन्तीके उपलक्ष्यमें सबने पूर्ण उपवास रखा। दिन भर श्रीचैतन्य भागवतका पारायण चलता रहा। शामको महाप्रभुके आविर्भाव उत्सव और भोग आदिके दर्शनोंके पश्चात् सबने अनुकल्प ग्रहण किया। श्रीगौर विरहमें कातर भेषोंके क्रन्दन और अश्रु-विसर्जनके कारण और दूसरे-दूसरे कार्यक्रमोंको स्थगित रखना पड़ा। दूसरे दिन ११ चैत्रको साधारण महोत्सवमें दस हजारसे भी अधिक लोगोंको महाप्रसाद वितरण किया गया।

उत्सव समाप्त होने पर सभी यात्री रोते-रोते अपने-अपने घरोंको लौटे। सबके मुख पर श्रीश्री-आचार्यदेवके प्रति अगाध श्रद्धाका भाव दिखलाई पड़ता था। वे सभी तरह-तरहसे उनका गुणगान करते हुए उनके चरणोंकी वन्दना कर विदा होते थे। उस समय करुणाका अगाध समुद्र उमड़ पड़ता था।

त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्ति जीवन जनार्दन महाराज और त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्ति वेदान्त त्रिविक्रम महाराजने धाम महात्म्य तथा उत्तम कल्याणको प्रदान करनेवाली हरि-कथाओंका यात्रियोंमें निरन्तर परिवेशन किये। श्रीपाद रसराज ब्रजवासी 'न्याय कोविद' के द्वारा की गयी व्यवस्थाका ढंग प्रशंसनीय था। श्रीपाद प्रबुद्ध कृष्ण ब्रह्मचारीकी लोक-लोचनसे दूर दिन-रात निरन्तर अथक सेवा-प्रवृत्ति सराहनीय और दूसरोंके लिये परम लोभनीय थी। इसके अतिरिक्त श्रीस्वाधिकारानन्द ब्रह्मचारी श्रीमुकुन्द गोपाल ब्रह्मचारी, श्रीगोराचाँद ब्रह्मचारी, श्रीहरि ब्रह्मचारी, श्रीभगवान दास ब्रह्मचारी, श्रीमाधव दास ब्रह्मचारी, श्रीरंगनाथ ब्रह्मचारी, श्रीहरिसाधन ब्रह्मचारी, श्रीपद्मनाभ दासाधिकारी और श्रीध्रुवानन्द दासाधिकारी आदि की निष्कपट और नैरन्तर्यमयी सेवा-प्रवृत्ति भी स्तुत्य रही है।

—निजस्व संवाददाता

यशोदानन्दन कृष्ण ही शचीनन्दन गौर हैं

[पूर्व-संख्या पृष्ठ २१८ से आगे]

श्रीश्रीगौराङ्गदेवकी भगवत्ताके प्रमाण श्रुति, श्रीमद्भागवत, महाभारत, विभिन्न पुराणों, विभिन्न तंत्रों, विभिन्न संहिताओं, श्रीचैतन्यचरितामृत और श्रीचैतन्यभागवत आदि असंख्य शास्त्रोंमें भरपूर हैं। इतने शास्त्रीय प्रमाणोंके रहते हुए भी यदि कोई श्रीचैतन्य देवको भगवान् न माने, तो उससे दुर्भागा पुरुष और कौन होगा? चैतन्यचरितामृतमें कहा गया है—

> स्वयं भगवान् कृष्ण एकले ईश्वर।
> अद्वितीय नन्दात्मज रसिक शेखर॥
> रासादि विलासी, ब्रज-जनना-नागर।
> आर यत देख सब ताँर परिकर॥

सेई कृष्ण अवतीर्ण श्रीकृष्ण चैतन्य ।
सेइ परिकरगण सङ्गे सब धन्य ॥
एकला ईश्वर-तत्त्व चैतन्य-ईश्वर ।
भक्त भावमय ताँर शुद्ध कलेवर ॥
ए सब ना माने येइ पण्डित सकल ।
ता सबार विद्या-पाठ भेक-कोलाहल ॥
ए सब ना माने ये वा करे कृष्ण-भक्ति ।
कृष्णकृपा नाहि तारे, नाहि तार गति ॥
पूर्वे जेन जरासन्ध आदि राजागण ।
वेद धर्म करि करे विष्णुर पूजन ॥
कृष्ण नाहि माने, ताते दैत्यकर मानि ।
चैतन्य ना मानिले तैछे दैत्य करि जानि ॥
मोरे ना मानिले सब लोक हबे नाश ।
इथि लागि कृपार्द्र प्रभु करिला संन्यास ॥
संन्यासी-बुद्धये मोरे करिबे नमस्कार ।
तथापि खण्डिबे दुःख पाइबे निस्तार ॥
हेन कृपामय चैतन्य ना भजे येइ जन ।
सर्वोत्तम हइलेओ तारे असुरे गणन ॥
अतएव पुनः कहों ऊर्द्ध्वबाहु हञा ।
चैतन्य नित्यानन्द भज कुतर्क छाड़िया ॥
श्रीकृष्ण चैतन्य दया करह विचार ।
विचार करिले चित्ते पाबे चमत्कार ॥

नित्यसिद्ध श्रीचैतन्य-पार्षद श्रीप्रबोधानन्द सरस्वती ने श्रीचैतन्य-चन्द्रामृत-ग्रन्थमें श्रीचैतन्यदेवके अवतार-के सम्बन्धमें विशेषरूपसे लिखा है । उनके कतिपय श्लोक उद्धार किये जा रहे हैं—

श्रीमद्भागवतस्य यत्र परमं तात्पर्यमुद्घाटितं
श्रीवैयासकिना दुरन्वयतया रासप्रसङ्गेऽपि यत् ।
यद्राधा रति केलि-नागर-रसास्वादैक-सद्राजमं
तद्वस्तु प्रथनाय गौर-वपुषा लोकेऽवतीर्णो हरिः ॥१२२॥

ग्रन्थ-सम्राट् श्रीमद्भागवतका गूढ़ तात्पर्य और व्रजके अतिशय निगूढ़ प्रेमका आस्वादन करनेके लिये एवं सज्जनोंको आस्वादन करानेके लिये स्वयं भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र पृथ्वीपर गौराङ्गके रूपमें अवतीर्ण हुए हैं ।

यदि निगदित-मीनाद्यंशवद्-गौरचन्द्रो
न तदपि स हि कश्चिच्छक्ति-लीलाविकाशः ।
अतुल-सकल शक्त्याश्चर्यलीला-प्रकाशै-
रनधिगत-महत्त्वः पूर्ण एवावतीर्णः ॥१४१॥

श्रीराम, नृसिंह, मत्स्य, कूर्म आदिकी तरह श्रीगौराङ्गदेव अंशावतार नहीं हैं—वे सम्पूर्ण अंशी-भगवान् हैं । क्योंकि मत्स्यादि अंशावतारोंने किसी एक शक्ति या लीलाका प्रकाश किया है । परन्तु अखिल शक्तियोंके आश्रय श्रीगौराङ्गदेवने अत्यन्त विचित्र लीला-समूहका प्रकाश किया है ।

सिंहस्कन्धं मधुर-मधुर स्मेरगण्डस्थलान्तं
दुर्विज्ञेयोज्ज्वल-रसमयाश्चर्य-नानाविकारम् ।
विभ्रद् कान्ति विकच-कनकाम्भोज-गर्भाभिरामा-
एकीभूतं वपुरवतु वो राधाया माधवस्य ॥१३॥

जिनका स्कंधदेश सिंहके स्कंधदेश जैसा उन्नत है, जिनका मुख-मण्डल मृदु-मधुर हास्यसे उद्भासित है, जो विप्रलंभ भावसे सर्वदा विभावित हैं, जिनकी अङ्गकान्ति सुवर्णसे भी अधिक उज्ज्वल है, वे राधा-माधव-मिलिततनु श्रीगौराङ्गदेव तुमलोगोंकी रक्षा करें ।

अचैतन्यमिदं विश्वं यदि चैतन्यमीश्वरम् ।
न विदुः सर्वशास्त्रज्ञा अपि भ्राम्यन्ति ते जनाः ॥३७॥

निखिल शास्त्रविद् व्यक्ति भी यदि श्रीचैतन्यदेव-को स्वयं भगवान् नहीं मानें, तो उन्हें दुःख और कष्ट अवश्य ही भोगना पड़ेगा ।

अचैतन्यमिदं विश्वं यदि चैतन्यमीश्वरम् ।
न भजेत् सर्वतोमृत्युरुपास्यममरोत्तमैः ॥६५॥

यदि कृष्ण-विमुख जगत् ब्रह्मा-शिव आदि श्रेष्ठ-देवताओंके भी परम उपास्य, सबके नियन्ता स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण चैतन्यका भजन न करे, तो उनकी मृत्यु अर्थात् संसार-दुःख अनिवार्य है ।

असंख्याः श्रुत्यादौ भगवदवतारा निगदिताः
प्रभावं कः सम्भावयतु परमेशादितरतः ।
किमन्यत् स्वप्रेष्ठे कति-कति सतां नाप्यनुभवा-
स्तथापि श्रीगौरे हरि-हरि न मूढा हरिधियः ॥४१॥

वेद आदि शास्त्रोंमें असंख्य अवतारोंका वर्णन है किन्तु श्रीगौरांग देवमें जैसा अत्यन्त आश्चर्य और असीम प्रभाव दिखलाई पड़ता है, वैसा प्रभाव सिवा स्वयं-भगवानके और कहाँ संभव है। अधिक क्या कहूँ, अपने प्रिय भक्तों और सज्जन महानुभावोंके निकट क्या उन्होंने चतुर्भुज एवं षड्भुज आदि सब प्रकारके ऐश्वर्य प्रकट नहीं किये हैं? हाय! हाय! इसे देख-सुनकर भी मूढ़ों और अभागोंको श्रीचैतन्य देवमें परमेश्वर बुद्धि नहीं होती।

धिगस्तु कुलमुज्ज्वलं धिगपि वाग्मितां धिग्यशो
धिगध्ययनमाकृतिं नवयः श्रियश्चास्तु धिक्।
द्विजत्वमपि धिक् परं विमलमाश्रमाद्यञ्च धिक्
न चेत् परिचितः कलौ प्रकट-गौर-गोपीपतिः ॥४३॥

स्वयं भगवान् गोपीजनवल्लभ श्रीकृष्णचन्द्र कलियुगमें श्रीगौरांग रूपमें अवतीर्ण हुए हैं। यदि उन परम करुण श्रीचैतन्य देवका भजन न किया जाय, तो सदाचारसम्पन्न सत्कुलको धिक्कार है, पाण्डित्यको धिक्कार है, यशको धिक्कार है, वेद आदि शास्त्रके अध्ययनको धिक्कार है, सौन्दर्यको धिक्कार है, युवावस्था और ऐश्वर्यको धिक्कार है, है, द्विजत्वको धिक्कार है; कहाँ तक गिनाया जाय, परम पवित्र ब्रह्मचर्यादि आश्रम और योग-याग-वैराग्य आदि सबको धिक्कार है। (क्रमशः)

—त्रिदण्डि स्वामी श्रीमद्भक्तिमयूख भागवत महाराज

श्रीगौड़ीय व्रतोपवास

[ज्येष्ठ]

२४ मधुसूधन, २ ज्येष्ठ, १७ मई, रविवार—श्रीनित्यानन्दशक्ति जाह्नवादेवी और श्रीरामशक्ति सीतादेवी का आविर्भाव।

२६ मधुसूदन ४ ज्येष्ठ, १९ मई, मङ्गलवार—मोहिनी एकादशीका उपवास, दूसरे दिन सवेरे ९-२१ के पहले पारण।

२८ मधुसूदन, ६ ज्येष्ठ, २१ मई, बृहस्पतिवार—श्रीनृसिंह चतुर्दशी व्रत और उपवास। दूसरे दिन सवेरे ९-२१ के पहले पारण।

५ त्रिविक्रम, १२ ज्येष्ठ, २७ मई, बुधवार—श्रीरामानन्द रायका तिरोभाव।

११ त्रिविक्रम, १८ ज्येष्ठ, २ जून, मङ्गलवार—अपरा एकादशीका उपवास। दूसरे दिन सवेरे ९-२१ के पहले पारण।

१२ त्रिविक्रम, १९ ज्येष्ठ, ३ जून, बुधवार—श्रीवृन्दावनदास ठाकुरका आविर्भाव।

१५ त्रिविक्रम, २३ ज्येष्ठ, ६ जून, शनिवार—श्रीगदाधर पण्डित गोस्वामीका आविर्भाव।

२५ त्रिविक्रम, १ आषाढ़, १६ जून, मंगलवार—दशहरा, श्रीगंगापूजा, श्रीबलदेव विद्याभूषण प्रभुका तिरोभाव।

२६ त्रिविक्रम, २ आषाढ़, १७ जून, बुधवार—पाण्डवा निर्जला एकादशीका उपवास दूसरे दिन सवेरे ८-५९ के पहले पारण।